गो.श्रीहित हरिवंशचन्द्रजी द्वारा विरचित

श्रीहित चौरासी

स्फुट वाणी, सेवक वाणी, राधाबल्लभ अष्टयाम,
रसिक नाम ध्वनि, यमुनाष्टक, विवाहोत्सव 'ब्याहुला',
करुणा बेली एवं स्फुट पदावली सहित

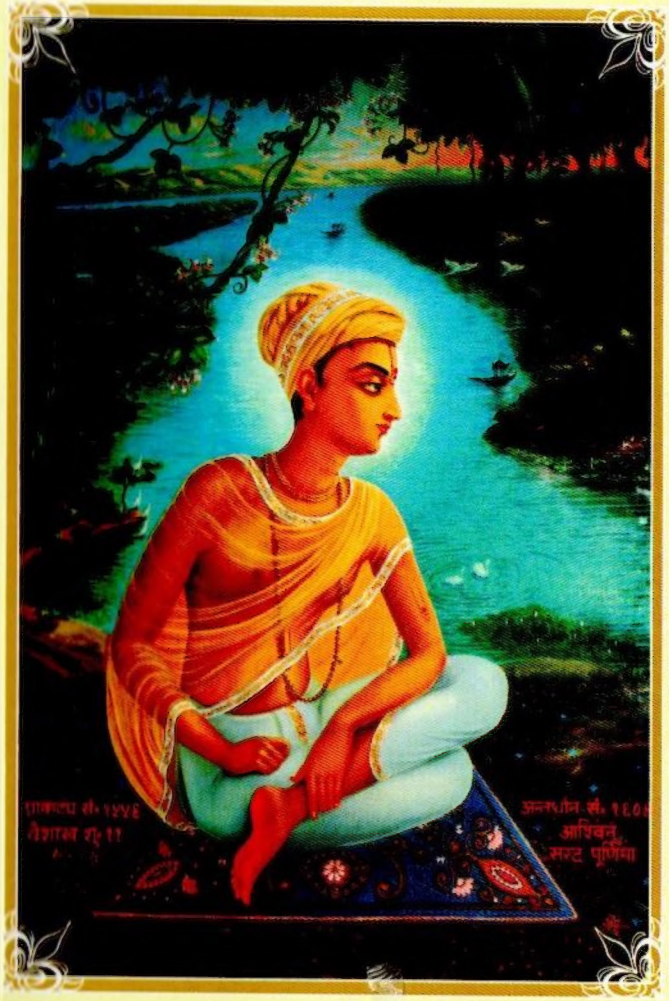

प्रकाशक: रसभारती संस्थान, वृन्दावन

गो. श्रीहित हरिवंशचन्द्रजी द्वारा विरचित

श्रीहित चौरासी

❑ श्रीहित चौरासी ❑ स्फुट वाणी ❑ सेवक वाणी

❑ राधाबल्लभ अष्टयाम ❑ रसिक नाम ध्वनि ❑ यमुनाष्टक

❑ विवाहोत्सव (ब्याहुला) ❑ करुणा बेली ❑ स्फुट पदावली

प्रकाशक

रस भारती संस्थान

2, सेवाकुंज गली, वृन्दावन

सम्पर्क सूत्र—09759217517

✷ प्रथम संस्करण ✷ न्यौछावर—मात्र 51 रुपये

नित्य पाठोपयोगी वाणियाँ

- श्रीहित चौरासी 3
- स्फुट वाणी 45
- सेवक वाणी 53
- राधाबल्लभ अष्टयाम 107
- रसिक नाम ध्वनि 136
- यमुनाष्टक 138
- विवाहोत्सव (ब्याहुला) 145
- करुणा बेली 149
- स्फुट पदावली 155

प्रकाशन तिथि
वृन्दावन प्राकट्य महोत्सव
कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी वि०सं० २०७४

प्राप्ति स्थल
श्रीराधा खण्डेलवाल ग्रन्थालय
राधा मोहन अलि कुंज के नीचे,
अठखम्भा बाजार, वृन्दावन-281121
जिला-मथुरा (उ० प्र०)
फोन : 0565-2443101

मुद्रक
श्रीजी विद्या मन्दिर
H/1/20, गोविन्द नगर,
परिक्रमा मार्ग, मथुरा
मो. 8126162336

* श्रीहित राधाबल्लभो जयति *
* श्रीहित हरिवंश चन्द्रो जयति *

श्रीहित चौरासी

[१]

राग-विभास

जोई-जोई प्यारौ करै सोई मोहि भावै,
भावै[1] मोहि जोई, सोई-सोई करै प्यारे।
मोकौं तौ भाँवती ठौर प्यारे के नैंननि में,
प्यारौ भयौ चाहै मेरे नैंननि के तारे॥
मेरे तौ तन-मन-प्राण हूँ तें प्रीतम प्रिय,
अपने कोटिक प्राण प्रीतम मोसौं हारे।
जै श्रीहित हरिवंश हंस-हंसिनी साँवल-गौर,
कहौ कौंन करै जल-तरंगनि न्यारे[2]॥

[२]

प्यारे बोली भामिनी, आजु नीकी जामिनी[3]।
भेंटि नवीन मेघ[4] सौं दामिनी[5]॥
मोंहन रसिक राइ री माई, तासौं जु मान करै ऐसी कौंन कामिनी।
जै श्रीहित हरिवंश श्रवण सुनत प्यारी,
राधिका रवन सौं मिली गज-गामिनी[6]॥

[३]

प्रात समैं दोऊ रस लंपट[7], सुरत[8]-जुद्ध जय जुत अति फूल।
श्रम वारिज घन विन्दु[9] वदन पर, भूषण[10] अंगहि-अंग विकल[11]॥

---

१. अच्छा लगता है २. अलग ३. रात्रि ४. जल भरे बादल ५. बिजुली ६. हाथी की भाँति झूमते हुए चलने वाली ७. रस लोभी ८. प्रेम ९. पसीने की घनी बूँदें १०. गहने ११. अस्तव्यस्त।

कछु रह्यौ तिलक सिथिल अलकावलि[1], वदन-कमल मानौं अलि[2] भूल।
जैश्रीहित हरिवंश मदन रँग रँगि रहे, नैंन बैंन[3] कटि सिथिल दुकूल[4]॥

[४]

आजु तौ जुवति तेरौ वदन आनंद भर्‌यौ,
पिय के संगम के सूचत सुख चैंन।
आलस वलित बोल[5], सुरँग रँगे कपोल,
विथकित[6] अरुन उनींदे दोऊ नैंन॥
रुचिर[7] तिलक लेस[8], किरत[9] कुसुम[10] केश,
सिर सीमंत[11] भूषित मानौं तैं न।
करुणा करि उदार, राखत कछू न सार,
दसन-वसन[12] लागत जब दैंन॥
काहे कौं दुरत भीरु[13], पलटे प्रीतम चीर,
बस किये श्याम सिखै शत मैंन।
गलित[14] उरसि[15] माल, सिथिल किंकिणी जाल,
जै श्रीहित हरिवंश लतागृह[16] सैंन॥

[५]

आजु प्रभात[17] लता मंदिर में, सुख वरषत अति हरषि जुगलवर।
गौर-श्याम अभिराम[18] रंग भरि, लटकि-लटकि पग धरत अवनि पर॥
कुच-कुमकुम रंजित मालावलि, सुरत नाथ श्रीश्याम धाम धर।
प्रिया प्रेम के अंक[19] अलंकृत[20], चित्रित चतुर शिरोमणि निजु कर॥
दंपति अति अनुराग मुदित, कल, गान करत मन हरत परस्पर।
जै श्रीहित हरिवंश प्रसंश परायन, गाइन अलि सुर देत मधुरतर॥

[६]

कौंन चतुर जुवती प्रिया, जाहि मिलत लाल चोर ह्वै रैंन।
दुरवत[21] क्यौंऽव दुरैं सुनि प्यारे, रंग में गहिले[22] चैंन में नैंन॥

१. केशपाश २. भ्रमर ३. वचन ४. वस्त्र ५. आलस्य से भरे हुए वचन ६. थके हुए ७. सुन्दर ८. थोड़ा सा ९. गिरते हैं १०. फूल ११. माँग १२. अधर १३. डरपोक, कायर १४. गली सी, मुरझाई १५. हृदय की १६. निकुंज १७. सुबह १८. सुन्दर १९. चिन्ह २०. शोभायमान २१. छिपाने से २२. डूबे हुये।

उर नख-चंद विराने[1] पट, अटपटे से बैंन।
जै श्रीहित हरिवंश रसिक राधापति, प्रमथित मैंन[2]॥

[७]

राग-विलावल

आजु निकुंज मंजु[3] में खेलत, नवल किशोर नवीन किशोरी।
अति अनुपम[4] अनुराग परस्पर, सुनि अभूत[5] भूतल पर जोरी॥
विद्रुम[6] फटिक[7] विविधि निर्मित[8] धर[9], नव कर्पूर पराग न थोरी।
कोमल किशलय[10] सैंन सुपेशल[11], तापर श्याम निवेसित[12] गोरी॥
मिथुन[13] हास-परिहास परायन, पीक कपोल कमल पर झोरी[14]।
गौर-श्याम-भुज-कलह मनोहर, नीवी-बंधन मोचत[15] डोरी॥
हरि-उर[16]-मुकर[17] विलोकि अपनपौ, विभ्रम विकल मान जुत भोरी।
चिवुक[18] सुचारु प्रलोइ[19] प्रबोधत, पिय-प्रतिविंव जनाइ निहोरी॥
नेति-नेति वचनामृत सुनि-सुनि, ललितादिक देखत दुरि चोरी।
जै श्रीहित हरिवंश करत कर धूनन[20], प्रणय कोप[21] मालावलि तोरी॥

[८]

अति ही अरुण[22] तेरे नैंन-नलिन[23] री।
आलस जुत इतरात रँगमगे, भये निशि जागर मखिन[24] मलिन री॥
सिथिल पलक में उठत गोलक गति, विधयौ मोहन-मृग सकत चलि न री।
जैश्रीहित हरिवंश हंस कल गामिनि[25], संभ्रम देत भ्रमरनि अलिन री॥

[९]

बनी श्रीराधा-मोहन की जोरी।
इंद्र नीलमणि[26] श्याम मनोहर, सातकुंभ[27] तन गोरी॥

१. दूसरे के २. प्रेम के कामदेव द्वारा मथित ३. सुन्दर ४. जिसकी कोई दूसरी उपमा नहीं हो ५. जो कभी न हुई हो ६. मूँगा ७. स्फटिक मणि ८. बनाई हुई ९. पृथ्वी १०. छोटी–छोटी नवीन पत्तियाँ ११. सुन्दर १२. विराजमान १३. युगल १४. कमल के पत्ते पर पड़ा हुआ एक प्राकृतिक चिन्ह १५. खोलते हैं १६. हृदय १७. दर्पण १८. ठोढ़ी १९. बार–बार छूकर २०. ताली बजाना २१. प्रेम का कोप २२. लाल २३. कमल २४. काजल २५. हंस जैसी सुन्दर चाल वाली २६. नीले रंग की एक मणि विशेष २७. सोना।

भाल विशाल तिलक हरि कामिनि, चिकुर[१] चंद्र बिच रोरी।
गज-नाइक[२] प्रभु चाल गयंदनि[३], गति वृषभानुकिशोरी॥
नील निचोल[४] जुवति मोहन पट, पीत अरुण सिर खोरी[५]।
जैश्रीहित हरिवंश रसिक राधापति, सुरत रंग में बोरी॥

[१०]

आजु नागरी-किशोर, भाँवती विचित्र जोर,
कहा कहौं अंग-अंग परम माधुरी।
करत केलि कंठ मेलि, बाहु दंड गंड-गंड[६],
परस सरस रास-लास[७] मंडली जुरी॥
श्याम-सुंदरी-बिहार, बाँसुरी मृदंग तार,
मधुर घोष[८] नूपुरादि किंकिणी चुरी।
जै श्री देखत हरिवंश आलि निर्त्तनी सुधंग[९] चाल,
वारि फेर देत प्राण देह सौं दुरी॥

[११]

मंजुल[१०] कल कुंज देस, राधा-हरि विशद वेष,
राका[११] नभ[१२] कुमुद-बंधु[१३], शरद-जामिनी।
श्यामल दुति कनक अंग, बिहरत मिलि एक संग,
नीरद[१४] मणि नील मध्य लसत दामिनी॥
अरुण-पीत नव दुकूल, अनुपम अनुराग मूल,
सौरभ - जुत[१५] शीत अनिल[१६] मंद गामिनी।
किशलय-दल-रचित सैंन, बोलत पिय चाटु बैंन[१७],
मान सहित प्रतिपद प्रतिकूल[१८] कामिनी॥
मोहन मन मथत मार, परसत कुच नीवी हार,
वेपथ-जुत[१९] नेति नेति[२०] वदत[२१] भामिनी।

१. बाल २. हाथियों में मुख्य ३. हथिनी की भाँति मल्हकती हुई चलने वाली ४. वस्त्र ५. पाग ६. कपोल ७. नृत्य विशेष ८. शब्द ९. एक नृत्य विशेष १०. सुन्दर ११. पूर्णिमा १२. आकाश १३. चन्द्रमा १४. बादल १५. सुगन्धित १६. वायु १७. खुशामद के वचन १८. पग–पग पर विरुद्ध १९. कम्प युत २०. नहीं–नहीं २१. कहना।

नरवाहन प्रभु सु केलि, बहु विधि भर भरत झेलि,
सौरत[१] रस रूप नदी जगत-पावनी॥

[१२]

चलहि राधिके सुजान, तेरे हित सुख निधान,
रास रच्यौ श्याम तट कलिंदनन्दिनी।
निर्त्तत जुवती-समूह, राग-रंग अति कुतूह[२],
बाजत रस-मूल मुरलिका अनन्दिनी॥
वंशीवट निकट जहाँ, परम रवन भूमि तहाँ,
सकल सुखद मलय बहै वायु मंदिनी।
जाती[३] ईषद[४] विकास, कानन अतिशय सुवास,
राका निशि शरद मास विमल चंदिनी॥
नरवाहन प्रभु निहारि लोचन भरि घोष-नारि[५],
नख-सिख सौंदर्ज काम दुख-निकंदिनी।
विलसौ भुज ग्रीव मेलि, भामिनि सुख-सिन्धु झेलि,
नव निकुंज श्याम केलि, जगत-वंदिनी॥

[१३]

नंद के लाल हर्‌यौ मन मोर।
हौं अपने मोतिनि-लर पोवति, काँकरि डारि गयौ सखि भोर॥
बंक विलोकनि चाल छबीली, रसिक-शिरोमनि नंद-किशोर।
कहि कैसैं मन रहत श्रवन सुनि, सरस मधुर मुरली की घोर॥
इंदु[६] गोविन्द-वदन के कारन, चितवन कौं भये नैंन चकोर।
जैश्रीहित हरिवंश रसिक रस जुवती, तू लै मिलि सखि प्रान अँकोर[७]॥

[१४]

अधर अरुन तेरे कैसैं कैं दुराऊँ।
रवि-शशि-शंक भजन किय अपु बस, अद्‌भुत रंगनि कुसुम बनाऊँ॥

१. सुरत सम्बन्धी २. कौतूहल ३. चमेली ४. किंचित ५. श्रीप्रियाजी ६. चन्द्रमा ७. भेंट ।

शुभ कौसेय[1] कसिव कौस्तुभ मणि, पंकज-सुतनि लै अँगनि लुपाऊँ।
हरषित इंदु तजत जैसैं जलधर, सो भ्रम ढूँढि कहाँ हौं पाऊँ॥
अंबुनि[2]-दंभ कछू नहिं व्यापत, हिमकर[3] तपै ताहि कैसैं कैं बुझाऊँ।
जैश्रीहित हरिवंश रसिक नव रँग पिय, भृकुटी भौंह तेरे खंजन लराऊँ॥

[१५]

अपनी बात मोसौं कहि री भामिनी,
औंगी-मौंगी[4] रहत गरव की माती।
हौं तोसौं कहत हारी, सुनि री राधिका प्यारी!
निशि कौ रंग क्यौं न कहत लजाती॥
गलित कुसुम बैनी, सुनि री सारंग-नैंनी[5],
छूटी लट अचरा वदत अरसाती।
अधर निरंग रंग रच्यौ री कपोलनि,
जुवति चलत गज गति अरुझाती॥
रहसि[6] रमी छबीले रसन - वसन[7] ढीले,
सिथिल कसनि कंचुकी उर राती।
सखी सौं सुनि श्रवन वचन मुदित मन,
चली हरिवंश भवन मुसिकाती॥

[१६]

आजु मेरे कहैं चलौ मृगनैंनी।
गावत सरस जुवति-मंडल में, पिय सौं मिलैं भलैं पिक बैनीं[8]॥
परम प्रवीन कोक-विद्या में, अभिनय-निपुन लाग गति लैनी।
रूप-रासि सुनि नवल किशोरी, पल-पल घटत चाँदनी रैंनी॥
जै श्रीहित हरिवंश चली अति आतुर[9], राधा रवन सुरत-सुख दैंनी।
रहसि रभस आलिंगन-चुंबन, मदन कोटि कुल भई कुचैंनी॥

१. रेशमी वस्त्र २. जल ३. चन्द्रमा ४. मौन ५. मृगनैनी ६. एकान्तः ७. किंकणी का वस्त्र (कटि वस्त्र) ८. कोकिल जैसी मधुर वाणी बोलने वाली, ९. वेग सहित।

[१७]

आजु देखि ब्रजसुंदरी-मोंहन बनी केलि।
अंश-अंश बाँहु दै किशोर जोर रूप-रासि,
मनु तमाल अरुझि रही सरस कनक बेलि।
नव-निकुंज भँवर-गुंज मंजु घोष प्रेम-पुंज,
गान करत मोर-पिकनि अपने सुर सौं मेलि।
मदन-मुदित अंग-अंग, बीच-बीच सुरत-रंग,
पलु-पलु हरिवंश पिवत नैंन-चषक[1] झेलि॥

[१८]

राग-आशावरी

सुनि मेरौ वचन छबीली राधा। तैं पायौ रस-सिन्धु अगाधा॥
तू वृषभान गोप की बेटी। मोंहनलाल रसिक हँसि भेंटी॥
जाहि विरंचि उमापति नाये[2]। तापै तैं वन फूल बिनाये॥
जो रस नेति-नेति श्रुति भाख्यौ। ताकौ तैं अधर-सुधा-रस चाख्यौ॥
तेरौ रूप कहत नहिं आवै। जैश्रीहित हरिवंश कछुक जस गावै॥

[१९]

खेलत रास रसिक ब्रज-मंडन। जुवतिनि अंश दियैं भुज दंडन॥
शरद विमल नभ चंद विराजै। मधुर-मधुर मुरली कल बाजै॥
अति राजत घनश्याम तमाला। कंचन बेलि बनी बरबाला॥
बाजत ताल मृदंग उपंगा। गान मथत मन कोटि अनंगा॥
भूषण बहुत विविध रँग सारी। अंग सुधंग दिखावति नारी॥
वरषत कुसुम मुदित सुर-जोषा[3]। सुनियत दिवि दुंदुभि कल घोषा॥
जैश्रीहित हरिवंश मगन मन श्यामा। राधा रवन सकल सुख धामा॥

[२०]

राग-धनाश्री

मोंहन लाल के रस माती।
वधू गुपति[4] गोवति[5] कत मोसौं, प्रथम नेह सकुचाती॥

१. कटोरा २. नमित हुए ३. देवताओं की स्त्री ४. गुप्त ५. छिपाती हो।

देखि सँभारि पीत पट ऊपर, कहाँ चूँनरी राती।
टूटी लर लटकति मोतिनि की, नख-विधु अंकित छाती॥
अधर-विंव-खंडित मषि-मंडित, गंड चलत अरुझाती।
अरुन नैंन घूमत आलस-जुत, कुसुम गलित लट पाती॥
आजु रहसि मोंहन सब लूटी, विविधि आपुनी थाती[1]।
जै श्री हित हरिवंश वचन सुनि भामिनि, भवन चली मुसिकाती॥

[२१]

तेरे नैंन करत दोऊ चारी[2]।
अति कुलकात समात नहीं कहूँ, मिले हैं कुंजबिहारी॥
विथुरी[3] माँग कुसुम गिरि-गिरि परैं, लटकि रही लट न्यारी।
उर नख-रेख प्रगट देखियत है, कहा दुरावत प्यारी॥
परी है पीक सुभग गंडनि पर, अधर निरँग सुकुँवारी।
जैश्रीहित हरिवंश रसिकनी भामिनि! आलस अँग-अँग भारी॥

[२२]

नैंननि पर वारौं कोटिक खंजन।
चंचल चपल अरुण अनियारे[4], अग्र भाग बन्यौं अंजन॥
रुचिर मनोहर बंक विलोकनि, सुरत-समर-दल-गंजन[5]।
जै श्रीहित हरिवंश कहत न बनैं छबि, सुख-समुद्र मन-रंजन॥

[२३]

राधाप्यारी! तेरे नैंन सलोल[6]।
तैं निज भजन[7] कनक तन जोवन, लियौ मनोहर मोल॥
अधर निरंग अलक लट छूटी, रंजित पीक कपोल।
तू रस-मगन भई नहिं जानत, ऊपर पीत निचोल॥
कुच जुग पर नख-रेख प्रगट मानौं, शंकर-शिर शशि-टोल।
जै श्रीहित हरिवंश कहत कछु भामिनि, अति आलस सौं बोल॥

१. धरोहर २. चुगली ३. बिखर गई ४. पेने ५. नाश करना ६. चंचल ७. सेवा या अंगीकार।

[२४]

आजु गोपाल रास रस खेलत, पुलिन कलपतरु तीर री सजनी।
शरद विमल नभ चंद विराजत, रोचक त्रिविधि समीर री सजनी॥
चंपक बकुल[1] मालती मुकलित[2], मत्त मुदित पिक-कीर री सजनी।
देसी सुधंग राग-रँग नीकौ, ब्रजजुवतिनि की भीर री सजनी॥
मघवा[3] मुदित निसान[4] बजायौ, व्रत छाँड़्यौ मुनि धीर री सजनी।
जै श्रीहित हरिवंश मगन मन श्यामा, हरत मदन घन पीर री सजनी॥

[२५]

आजु नीकी बनी श्रीराधिका नागरी।
ब्रजजुवति-जूथ में रूप अरु चतुरई,
शील-सिंगार-गुन सबनि तें आगरी[5]॥
कमल दच्छिन भुजा, वाम भुज अंश सखि,
गावती सरस मिलि मधुर सुर राग री।
सकल विद्या विदित, रहसि हरिवंश हित,
मिलत नव कुंज वर श्याम बड़ भाग री॥

[२६]

मोहिनी मदन गोपाल की बाँसुरी।
माधुरी श्रवन पुट, सुनत सुनि राधिके,
करत रतिराज[6] के ताप कौ नासु री॥
शरद राका रजनि, विपिन वृन्दा सजनि,
अनिल अति मंद सीतल सहित बासु री।
परम पावन पुलिन, भृंग सेवत नलिन,
कलपतरु-तीर बलवीर[7] कृत रासु री॥
सकल मंडल भलीं, तुम जु हरि सौं मिलीं,
बनी वर बनित[8], उपमा कहौं कासु री।

१. मौलश्री २. अधखिली ३. इन्द्र ४. दुन्दुभी ५. श्रेष्ठ या अग्रगण्य ६. कामदेव ७. श्रीलाल जी ८. श्रेष्ठ बानिक।

तुम जु कंचन तनी, लाल मर्कत मनी,
उभय कल हंस हरिवंश बलि दासु री॥

[२७]

राग-बसंत

मधुरितु वृन्दावन आनँद न थोर।
राजत नागरी नव कुशल किशोर॥
जूथिका[१] जुगल रूप[२] मंजरी रसाल[३]।
विथकित अलि मधु माधवी[४] गुलाल॥
चंपक-वकुल-कुल विविध सरोज।
केतकी मेदनी मद मुदित मनोज॥
रोचक रुचिर बहै त्रिविधि समीर।
मुकलित नूत[५] नदित[६] पिक-कीर॥
पावन पुलिन घन मंजुल निकुंज।
किशलय सैन रचित सुख-पुंज॥
मंजीर मुरज डफ मुरली मृदंग।
बाजत उपंग वीना वर मुखचंग॥
मृगमद[७] मलयज[८] कुमकुम[९] अबीर।
वन्दन अगरसत[१०] सुरंगित चीर॥
गावति सुंदरि-हरि सरस धमारि।
पुलकित खग-मृग बहत न वारि॥
जै श्रीहित हरिवंश हंस-हंसिनी समाज।
ऐसैं ही करौ मिलि जुग-जुग राज॥

[२८]

राधे ! देखि वन की बात।
रितु बसन्त अनंत मुकलित, कुसुम अरु फल पात॥

१. चमेली २. स्वेत और पीत दो प्रकार की ३. आम ४. मधुर माधुरी लता ५. आम ६. शब्दित ७. कस्तूरी ८. चन्दन ९. केसर १०. चोबा।

बैंनु धुनि नँदलाल बोली, सुनिव क्यौं अरसात।
करत कतव[१] विलंव भामिनि, वृथा औसर जात॥
लाल मर्कत मणि छबीलौ, तुम जु कंचन गात।
बनी श्रीहित हरिवंश जोरी, उभय गुन-गन-मात[२]॥

[२९]

राग-देवगंधार

ब्रज नव तरुणि कदंब मुकट मणि, श्यामा आजु बनी।
नख सिख लौं अँग-अंग माधुरी, मोहे श्याम धनी॥
यौं राजत कवरी[३] गूँथित कच[४], कनक-कंज वदनी[५]।
चिकुर चंद्रिकनि[६] बीच अरध विधु[७], मानौं ग्रसित फनी[८]॥
सौभग रस सिर श्रवत पनारी, पिय सीमंत ठनी[९]।
भृकुटि काम-कोदंड[१०] नैंन-सर, कज्जल रेख अनी॥
तरल तिलक ताटंक[११] गंड पर, नासा जलज[१२] मनी।
दसन-कुंद सरसाधर पल्लव, प्रीतम मन शमनी[१३]॥
चिवुक मध्य अति चारु सहज सखि, साँवल विन्दु कनी।
प्रीतम-प्राण-रतन-संपुट[१४] कुच, कंचुकि कसिव तनी[१५]॥
भुज-मृनाल बल हरत वलय-जुत, परस-सरस श्रवनी।
श्याम सीस तर मनु मिडवारी[१६], रची रुचिर रवनी॥
नाभि गंभीर मीन मोंहन-मन, खेलनि कौं ह्रदनी[१७]।
कृश कटि पृथु नितंब किंकिनि वृत[१८], कदलि-खंभ जघनी॥
पद-अंबुज जावक-जुत भूषन, प्रीतम उर अवनी।
नव-नव भाइ विलोभि भाम इभ[१९], बिहरत वर करिनी॥
जै श्रीहित हरिवंश प्रसंशित श्यामा, कीरति विशद घनी।
गावत श्रवननि सुनत सुखाकर, विश्व दुरित[२०] दवनी॥

१. क्यौं अब २. मत्त ३. वेणी ४. बाल ५. स्वर्ण कमल के समान मुख वाली ६. बालों की बनी हुई चन्द्रिका ७. आधा चन्द्रमा ८. राहु या सर्प ९. रची है १०. धनुष ११. कर्णाभूषण १२. मोती १३. शान्ति देने वाली १४. डिब्बा १५. कस कर बँधी हुई १६. आलवाल १७. सरोवर १८. घिरे हुए १९. हाथी २०. पाप।

[३०]

देखत नव निकुंज सुनि सजनी, लागत है अति चारु।
माधविका, केतकी लता लै, रच्यौ मदन आगार[1]॥
शरद मास राका निशि शीतल, मंद-सुगंध समीर।
परिमल[2] लुब्ध मधुव्रत[3], विथकित, नदित कोकिला-कीर॥
बहु विधि रंग मृदुल किशलय-दल, निर्मित पिय सखि सेज।
भाजन कनक विविधि मधु पूरित, धरे धरनि पर हेज[4]॥
तापर कुशल किशोर-किशोरी, करत हास-परिहास।
प्रीतम पानि उरज वर परसत, प्रिया दुरावत वास[5]॥
कामिनि कुटिल भृकुटि अवलोकत, दिन-प्रतिपद प्रतिकूल।
आतुर अति अनुराग विवस हरि, धाइ धरत भुजमूल॥
नागर नीवी-बंधन मोचत, ऐंचत नील निचोल।
वधू कपट हठि कोप कहत कल, नेति नेति मधु बोल॥
परिरंभन विपरित रति वितरत, सरस सुरत निजु केलि।
इंद्रनीलमणिमय तरु मानौं, लसत कनक की बेलि॥
रति-रण-मिथुन ललाट पटल पर, श्रम-जल-सीकर संग।
ललितादिक अंचल झकझोरत, मन अनुराग अभंग॥
जै श्रीहित हरिवंश जथामति वरनत, कृष्ण-रसामृत-सार[6]।
श्रवन सुनत प्रापक[7] रति राधा-पद-अंबुज सुकुँवार॥

[३१]

आजु अति राजत दंपति भोर।
सुरत रंग के रस में भीने, नागरि नवल-किशोर॥
अंशनि पर भुज दियैं विलोकत, इंदु-वदन विवि ओर।
करत पान रस-मत्त परस्पर, लोचन तृषित चकोर॥
छूटी लटनि लाल मन करष्यौ[8], ये याके चित चोर।

१. घर २. सुगन्ध ३. भ्रमर ४. प्रीति पूर्वक सम्हालकर ५. वस्त्र ६. श्रृंगार रस रूपी अमृत का भी सार अथवा श्रीमद्भागवत वर्णित श्रीकृष्ण रस का सार ७. प्राप्त करने वाला ८. आकर्षित किया।

परिरंभन-चुंबन मिलि गावत, सुर मंदर कल घोर॥
पग डगमगत चलत वन बिहरत, रुचिर कुंज घन खोर[1]।
जैश्रीहित हरिवंश लाल-ललना मिलि, हियौ सिरावत[2] मोर॥

[३२]

आजु वन क्रीड़त श्यामा-श्याम।
सुभग बनी निशि शरद-चाँदनी, रुचिर कुंज अभिराम॥
खंडन अधर करत परिरंभन, ऐंचत जघन दुकूल।
उर नख-पात तिरीछी चितवनि, दंपति रस-समतूल[3]॥
वे भुज पीन-पयोधर परसत, वाम दृशा[4] पिय हार।
वसननि पीक अलक आकरषत, समर-श्रमित शत मार॥
पल-पल प्रबल चौंप रस-लंपट, अति सुंदर सुकुँवार।
जै श्रीहित हरिवंश आजु तृण टूटत, हौं बलि विशद बिहार॥

[३३]

आजु वन राजत जुगल किशोर।
नंदनँदन-वृषभानुनंदिनी, उठे उनींदे भोर॥
डगमगात पग परत सिथिल गति, परसत नख शशि छोर[5]।
दसन-वसन खंडित मखि मंडित, गंड तिलक कछु थोर॥
दुरत न कच करजन[6] के रोकैं, नैंन अरुन[7] अलि चोर।
जै श्रीहित हरिवंश सँभार न तन-मन, सुरत-समुद्र झकोर॥

[३४]

वन की कुंजनि-कुंजनि डोलनि।
निकसत निपट[8] साँकरी वीथिनि, परसत नाहिं निचोलनि॥
प्रातकाल रजनी सब जागे, सूचत सुख दृग लोलनि।
आलसवन्त अरुण अति व्याकुल, कछु उपजत गति गोलनि[9]॥
निर्त्तन भृकुटि वदन अम्बुज मृदु, सरस हास मधु बोलनि।

१. सघन गली २. शीतल करते हैं ३. रस की दृष्टि से एक समान ४. श्रीप्रिया जी ५. नख रूपी चन्द्रमाओं के सिरों का पृथ्वी से स्पर्श होता है ६. अँगुलियों ७. पाठा. अरुन नैंन ८. अत्यन्त ९. नेत्रों की पुतली।

अति आसक्त लाल अलि लंपट, बस कीने बिनुमोलनि॥
विलुलित[1] सिथिल श्याम छूटी लट, राजत रुचिर कपोलनि।
रति विपरित चुंबन-परिरंभन, चिबुक चारु टकटोलनि[2]॥
कबहुँ श्रमित किशलय सज्जा पर, मुख अंचल झकझोलनि[3]।
दिन हरिवंश दासि हिय सींचत, वारिध केलि कलोलनि[4]॥

[३५]

झूलत दोऊ नवल किशोर।
रजनी जनित[5] रंग सुख सूचत, अंग-अंग उठि भोर॥
अति अनुराग भरे मिलि गावत, सुर मंदर[6] कल घोर[7]।
बीच-बीच प्रीतम चित चोरत, प्रिया नैंन की कोर॥
अबला अति सुकुँवारि डरत मन, वर हिंडोर झकोर।
पुलकि-पुलकि प्रीतम उर लागति, दै नव उरज अँकोर॥
अरुझी विमल माल कंकन सौं, कुंडल सौं कच डोर।
वेपथ जुत क्यौं बनैं विवेचित[8], आनँद बढ़्यौ न थोर॥
निरखि-निरखि फूलत ललितादिक, विवि[9] मुख चंद चकोर।
दै असीस हरिवंश प्रसंशित, करि अंचल के छोर॥

[३६]

राग-सारँग

आजु वन नीकौ रास बनायौ।
पुलिन पवित्र सुभग जमुना तट, मोंहन वैंनु बजायौ॥
कल कंकन किंकिनि नूपुर-धुनि, सुनि खग-मृग सचु[10] पायौ।
जुवतिनि मंडल मध्य श्याम घन, सारँग राग जमायौ॥
ताल-मृदंग-उपंग-मुरज-डफ, मिलि रस-सिंधु बढ़ायौ।
विविध विशद वृषभानुनंदिनी, अंग सुधंग[11] दिखायौ॥
अभिनय[12]-निपुण लटकि लट[13] लोचन, भृकुटि अनंग नचायौ।

१. अस्तव्यस्त (चंचल) २. सहलाना ३. अंचल के द्वारा पवन करना ४. कलोल करना ५. रात की क्रीड़ा के द्वारा उत्पन्न ६. प्रथम सप्तक के स्वर ७. उच्च स्वर ८. सुलझाने का विवेक ९. दोनों १०. सुख ११. सुधंग नृत्य का अंग १२. नाट्य १३. अलक।

ताताथेई ताथेई धरति नौतन[1] गति, पति ब्रजराज रिझायौ॥
सकल उदार नृपति चूड़ामणि, सुख-वारिद[2] वरषायौ।
परिरंभन-चुंबन-आलिंगन, उचित जुवतिजन पायौ॥
वरषत कुसुम मुदित नभ नाइक, इन्द्र निसान बजायौ।
जै श्रीहित हरिवंश रसिक राधापति, जस-वितान[3] जग छायौ॥

[३७]

चलहि किन मानिनि कुंज कुटीर[4]।
तो बिनु कुँवरि कोटि बनिता-जुत, मथत मदन की पीर॥
गदगद स्वर, विरहाकुल पुलकित, श्रवत विलोचन नीर।
क्वासि-क्वासि[5] वृषभानुनंदिनी, विलपत विपिन अधीर॥
वंशी विशिख[6] व्याल[7] मालावलि, पंचानन[8] पिक-कीर।
मलयज गरल, हुतासन[9] मारुत, साखामृग-रिपु[10] चीर॥
जै श्रीहित हरिवंश परम कोमल चित, चपल चली पिय-तीर।
सुनि भयभीत बज्र कौ पंजर[11], सुरत - सूर रणवीर॥

[३८]

वेगि चलहि उठि गहर[12] करत कत, निकुंज बुलावत लाल।
हा राधा! राधिका! पुकारत, निरखि मदन-गज ढाल[13]॥
करत सहाइ शरद शशि मारुत, फूटि मिली[14] उर माल।
दुर्गम तकत[15] समर अति कातर, करहि न पिय प्रतिपाल॥
जैश्रीहित हरिवंश चली अति आतुर, श्रवन सुनत तिहि काल।
लै राखे गिरि-कुच बिच सुंदर, सुरत-सूर ब्रजबाल॥

[३९]

खेल्यौ लाल चाहत रवन[16]।
रचि-रचि अपने हाथ सँवार्‌यौ, निकुंज भवन॥

१. नवीन २. मेघ ३. कीर्ति का मंडप ४. छोटी कुंज ५. कहाँ ? कहाँ ? ६. बाण ७. सर्प ८. सिंह ९. अग्नि १०. बन्दर का शत्रु क्रौंच–फरी ११. मदन के भय से अत्यन्त भयभीत (लाल जी) १२. विलम्ब १३. मदन रूपी हाथी का झुकाव १४. विपक्ष में जा मिली १५. दुरूह स्थलों को ढूँढ रहे हैं १६. प्रेम–क्रीड़ा।

रजनी शरद मंद सौरभ सौं, सीतल पवन।
तो बिनु कुँवरि काम की वेदन, मेटऽव कवन[१]॥
चलहि न चपल बाल मृगनैंनी, तजिऽव मवन[२]।
जै श्रीहित हरिवंश मिलऽव प्यारे की, आरति-दवन[३]॥

[४०]

बैठे लाल निकुंज भवन।
रजनी रुचिर मल्लिका[४] मुकलित, त्रिविधि पवन॥
तू सखि काम केलि मनमोंहन मदन-दवन।
वृथा गहर कत करत कृशोदरि[५], कारन कवन॥
चपल चली तन की सुधि बिसरी, सुनत श्रवन।
जै श्रीहित हरिवंश मिले रस-लंपट, राधिका रवन॥

[४१]

प्रीति की रीति रँगीलौई जानैं।
जद्यपि सकल लोक चूड़ामणि, दीन अपनपौ मानैं॥
जमुना पुलिन निकुंज भवन में, मान मानिनी ठानैं।
निकट नवीन कोटि कामिनि-कुल, धीरज मनहिं न आनैं॥
नश्वर[६] नेह चपल मधुकर ज्यौं, आन-आन सौं बानैं[७]।
जै श्रीहित हरिवंश चतुर सोई लालहिं, छाँडि मेंड़[८] पहिचानैं॥

[४२]

प्रीति न काहू की कानि[९] विचारै।
मारग-अपमारग[१०] विथकित मन, को अनुसरत निवारै[११]॥
ज्यौं सरिता सावन जल उमगत, सनमुख सिन्धु सिंधारै।
ज्यौं नादहि मन दियैं कुरंगनि, प्रगट पारधी[१२] मारै॥
जैश्रीहित हरिवंश हिलग[१३] सारँग[१४] ज्यौं, सलभ[१५] शरीरहिं जारै।
नाइक निपुन नवल मोंहन बिनु, कौंन अपनपौ हारै॥

१. कौंन २. मौंन ३. दुख का नाश करने वाली ४. चमेली ५. श्रीप्रिया जी ६. नाशवान ७. बनता है या प्रीति करता है ८. सींवाँ ९. मर्यादा १०. कुमार्ग ११. रोक सकता है १२. बधिक १३. प्रीति १४. दीपक १५. पतंग।

[४३]

अति नागरि वृषभानुकिशोरी।
सुनि दूतिका चपल मृगनैंनी, आकर्षति चितवत चित गोरी॥
श्रीफल उरज कंचन सी देही, कटि-केहरि गुन-सिन्धु-झकोरी।
वैंनी भुजंग चंद शत वदनी, कदलि[१] जंघ जलचर[२] गति चोरी॥
सुनि हरिवंश आजु रजनीमुख[३], वन मिलाइ मेरी निजु जोरी।
जद्यपि मान समेत भामिनी, सुनि कत रहत भली जिय भोरी॥

[४४]

चलि सुंदरि बोली वृन्दावन।
कामिनि कंठ लागि किन राजहि, तू दामिनि मोंहन नौतन घन॥
कंचुकि सुरँग विविधि रँग सारी, नख जुग ऊन[४] बने तेरे तन।
ये सब उचित नवल मोंहन कौं, श्रीफल कुच जोवन-आगम[५] धन॥
अतिशय प्रीति हुती अंतरगति, जैश्रीहितहरिवंश चली मुकलित मन।
निविड़[६] निकुंज मिले रस-सागर, जीते सत रतिराज सुरत रन॥

[४५]

आवति श्रीवृषभानुदुलारी।
रूप-रासि अति चतुर शिरोमणि, अंग-अंग सुकुमारी॥
प्रथम उवटि मज्जन करि सज्जित, नील वरन तन सारी।
गूँथित अलक तिलक कृत सुंदर, सेंदुर माँग सँवारी॥
मृगज[७] समान नैंन अंजन जुत, रुचिर रेख अनुसारी।
जटित लवंग ललित नासा पर, दसनावलि कृत कारी[८]॥
श्रीफल उरज कसूँभी कंचुकि कसि, ऊपर हार छबि न्यारी।
कृश[९] कटि उदर गंभीर नाभि पुट, जघन नितंबनि भारी॥

१. केला २. मीन या हंस ३. संध्या ४. सोलह श्रृंगार ५. यौवन का प्रारम्भ ६. सघन ७. मृग छौना ८. काली की ९. पतली।

मनौं मृणाल भूषन भूषित भुज, श्याम अंस पर डारी।
जैश्रीहित हरिवंश जुगल करनी-गज, बिहरत वन पिय-प्यारी॥

[४६]

विपिन घन कुंज रति केलि[1] भुज मेलि रुचि,
श्याम-श्यामा मिले शरद की जामिनी।
ह्वै अति फूल समतूल पिय-नागरी,
करिनि-करि मत्त मनौं विविध गुन-रामिनी[2]॥
सरस गति हास परिहास आवेश बस,
दलित दल मदन बल कोक रस कामिनी।
जै श्रीहित हरिवंश सुनि लाल लावनि विधे[3],
प्रिया अति सूर सुख सुरत संग्रामिनी॥

[४७]

वन की लीला लालहिं भावै।
पत्र-प्रसून बीच प्रतिविंवहि, नख-सिख प्रिया जनावै॥
सकुचि न सकत प्रगट परिरंभन, अलि लंपट दुरि धावै[4]।
संभ्रम देत[5] कुलकि कल कामिनि, रति-रण-कलह मचावै॥
उलटी सबै समुझि नैंननि में, अंजन रेख बनावै।
जै श्रीहित हरिवंश प्रीति रीति बस, सजनी श्याम कहावै॥

[४८]

बनी वृषभानुनंदिनी आजु।
भूषन-वसन विविध पहिरैं तन, पिय मोंहन हित साजु॥
हाव-भाव लावण्य भृकुटि लट, हरत जुवतिजन पाजु[6]।
ताल भेद अवघर[7] स्वर सूचत, नूपुर-किंकिणि बाजु॥
नव निकुंज अभिराम श्याम सँग, नीकौ बन्यौ समाजु।
जै श्रीहित हरिवंश विलास रास जुत, जोरी अविचल राजु॥

१. प्रेम क्रीड़ा २. गुणों से रमणीय ३. लुनाई से भींज रहे हैं ४. छिप कर दौड़ते हैं ५. भ्रम उत्पन्न करना ६. गर्व ७. कठिन।

[४९]

देखि सखी राधा-पिय केलि।
ये दोउ खौर खिरक गिरि गहवर, बिहरत कुँवर कंठ भुज मेलि॥
ये दोउ नवल किशोर रूप निधि, विटप तमाल कनक मनौं बेलि।
अधर अदन[1] चुंबन-परिरंभन, तन पुलकित आनँद रस झेलि॥
पट बंधन[2] कंचुकि कुच परसत, कोप कपट निरखत कर पेलि[3]।
जै श्रीहित हरिवंश लाल रस लंपट, धाइ[4] धरत उर बीच सकेलि[5]॥

[५०]

नवल नागरि नवल नागर किशोर मिलि,
कुंज कोमल कमल-दलनि सज्जा रची।
गौर-श्यामल अंग रुचिर तापर मिले,
सरस मणि नील मनु मृदुल कंचन खची॥
सुरत नीवी निबंध हेत प्रिय मानिनी,
प्रिया की भुजनि में कलह मोंहन मची।
सुभग श्रीफल उरज पानि परसत रोष,
हुँकार गर्व दृग-भंग भामिनि लची[6]॥
कोक कोटिक रभस रहसि हरिवंश हित
विविध कल माधुरी किमपि[7] नाहिंन बची।
प्रणयमय रसिक ललितादि लोचन-चषक,
पिवत मकरंद सुख-रासि अंतर सची[8]॥

[५१]

दान[9] दै री नवल किशोरी।
माँगत लाल लाड़िलौ नागर, प्रगट भई दिन-दिन की चोरी॥
नव नारंग[10] कनक हीरावलि, विद्रुम सरस जलज मणि गोरी।
पूरित रस पीयूष[11] जुगल घट, कमल कदलि खंजन की जोरी॥

१. अधर खंडन २. डोरी ३. हाथ को हटा कर ४. आवेश पूर्वक ५. समेट कर ६. झुकी ७. कुछ भी या कोई ८. हृदय में संचित कर ली ९. कर (रस का दान) १०. नारंगी ११. अमृत।

तोपै सकल सौंज दामनि की, कत सतरात कुटिल दृग भोरी।
नूपुर रव किंकिनी पिसुन घर[१], जै श्रीहित हरिवंश कहत नहिं थोरी॥

[५२]

राग-मलार

देखौ माई सुंदरता की सींवाँ।
ब्रज नव तरुनि कदंब नागरी, निरखि करत अध ग्रीवाँ[२]॥
जो कोउ कोटि कलप लगि जीवै, रसना कोटिक पावै।
तऊ रुचिर वदनारविंद की, शोभा कहत न आवै॥
देव-लोक भू-लोक रसातल, सुनि कवि-कुल मति डरियै।
सहज माधुरी अंग-अंग की, कहि कासौं पटतरियै[३]॥
जै श्रीहित हरिवंश प्रताप रूप-गुन, वय बल श्याम उजागर।
जाकी भ्रूविलास बस पशुरिव[४], दिन विथकित[५] रस-सागर॥

[५३]

देखौ माई अबला कैं बल रासि।
अति गज मत्त निरंकुश मोंहन, निरखि बँधे लट पाशि[६]॥
अब हीं पंगु[७] भई मन की गति, बिनु उद्दिम अनियास[८]।
तब की कहा कहौं जब पिय प्रति, चाहत भृकुटि विलास॥
कच संजमन[९] व्याज[१०] भुज दरसत, मुसिकनि वदन विकास।
हा हरिवंश अनीति रीति हित, कत डारत तन त्रास॥

[५४]

नयौ नेह नव रंग नयौ रस, नवल श्याम वृषभानुकिशोरी।
नव पीतांबर नवल चूँनरी, नई-नई बूँदनि भींजति गोरी॥
नव वृन्दावन हरित मनोहर, नव चातिक बोलत मोर-मोरी।
नव मुरली जु मलार नई गति, श्रवन सुनत आये घन घोरी॥

१. घर के ही चुगली करने वाले २. नीचा कण्ठ ३. उपमा देना या समता ४. पशु के समान ५. विवश ६. अलकों का बन्धन ७. शिथिल ८. बिना चेष्टा ९. बालों को बाँधने १०. बहाने।

नव भूषन नव मुकट विराजत, नई-नई उरप[१] लेत थोरी-थोरी।
जैश्रीहितहरिवंश असीस देत मुख, चिरजीवौ भूतल यह जोरी॥

[५५]

आजु दोउ दामिनि मिलि बहसीं[२]।
बिच लै[३] श्याम घटा अति नौतन, ताकैं रंग रसी[४]॥
एक चमकि चहुँ ओर सखी री, अपने सुभाइ[५] लसी।
आई एक सरस गहनी[६] में, दुहुँ भुज बीच बसी॥
अंबुज नील उभै विधु राजत, तिनकी चलनि खसी[७]।
जै श्रीहित हरिवंश लोभ भेंटन मन, पूरन शरद शशी॥

[५६]

राग-गौड़ मलार

हौं बलि जाँउ नागरी श्याम।
ऐसैं ही रंग करौ निशि-बासर, वृन्दाविपिन कुटी अभिराम॥
हास-विलास सुरत रस सींचन, पशुपति-दग्ध[८] जिवावत काम।
जैश्रीहित हरिवंश लोल लोचन-अलि, करहु न सफल सकल सुख धाम॥

[५७]

राग-गौरी

प्रथम जथामति प्रणउँ[९], श्रीवृन्दावन अति रम्य।
श्रीराधिका कृपा बिनु, सब कैं मननि अगम्य[१०]॥
वर जमुना जल सींचन, दिनहीं[११] शरद-बसंत।
विविध भाँति सुमनसि[१२] के, सौरभ अलि-कुल मंत[१३]॥
अरुण नूत पल्लव पर, कूजत कोकिल-कीर।
निर्तनि करत सिखी-कुल[१४], अति आनंद अधीर॥
बहति पवन रुचि दाइक, शीतल-मंद-सुगंध।

१. निर्त की गति २. होड़ लगाई ३. बीच में लेकर ४. रंग में रँगी ५. सहज स्वभाव ६. पकड़ ७. शिथिल हो गई ८. शिवजी के द्वारा भस्म किये गये ९. प्रणाम करते हैं १०. दुरूह ११. नित्य प्रति १२. पुष्प १३. मत्त १४. मोरों का समूह।

अरुण-नील-सित मुकलित, जहाँ तहाँ पूषण-बंधु[1]॥
अति कमनीय विराजत, मंदिर नवल निकुंज।
सेवत सगन प्रीति जुत, दिन मीनध्वज-पुंज॥
रसिक रास जहाँ खेलत, श्यामा-श्याम किशोर।
उभय बाहु परिरंजित[2], उठे हैं उनींदे भोर॥
कनक कपिस[3] पट शोभित, सुभग साँवरे अंग।
नील वसन कामिनि उर, कंचुकी कसूँभी सुरंग॥
ताल रवाव मुरज डफ, बाजत मधुर मृदंग।
सरस उकति गति[4] सूचत, वर बँसुरी मुखचंग॥
दोउ मिलि चाँचरि गावत, गौरी राग अलाप।
मानस मृग बल बेधत, भृकुटी धनुष दृग चाप॥
दोउ कर तारिनि पटकत, लटकत इत उत जात।
हो-हो-होरी बोलत, अति आनँद कुलकात॥
रसिक लाल पर मेलत, कामिनि वंदन धूर।
पिय पिचकारिनि छिरकत, तकि-तकि कुमकुम पूरि॥
कबहुँ-कबहुँ चंदन तरु, निर्मित तरल हिंडोल।
चढ़ि दोऊजन झूलत, फूलत करत कलोल॥
वर हिंडोर झकोरनि, कामिनि अधिक डरात।
पुलकि-पुलकि वेपथ अँग, प्रीतम उर लपटात॥
हित चिंतक निज चेरिनि, उर आनँद न समात।
निरखि निपट नैंननि सुख, तृण तोरत बलि जात॥
अति उदार विवि सुंदर, सुरत सूर सुकुँवार।
जै श्रीहित हरिवंश करौ दिन, दोऊ अचल बिहार॥

[५८]

तेरे हित लैन आई वन तें श्याम पठाई,
हरति कामिनि धन कदन[5] काम कौ।

१. कमल २. शोभित ३. स्वर्ण के समान पीला ४. गान की गति ५. गहन कष्ट।

काहे कौं करत बाधा, सुनि री चतुर राधा,
भेंटिकैं मेटि री माई प्रगट जगत भौ[1]॥
देखि री रजनी नीकी रचना रुचिर पिय की,
पुलिन नलिन नभ उदित रोहिनी - धौ[2]।
तू तौऽव सखी सयानी तैं मेरी एकौ न मानी,
हौं तोसौं कहत हारी जुवति जुगति सौं॥
मोंहन लाल छबीलौ अपने रंग रँगीलौ,
मोहत विहंग पशु मधुर मुरली - रौ[3]।
वे तौऽव गनत तन जीवन जोवन तव,
जैश्रीहित हरिवंश हरि भजहि भामिनि जौ॥

[५९]

यह जु एक मन बहुत ठौर करि, कहि कौनैं सचु पायौ।
जहँ तहँ विपति जार-जुवती[4] लौं, प्रगट पिंगला गायौ॥
द्वै तुरंग पर जोर चढ़त हठि, परत कौंन पै धायौ।
कहि धौं कौंन अंक पै राखै, जो गनिका सुत जायौ॥
जैश्रीहित हरिवंश प्रपंच वंच सब, काल-व्याल कौ खायौ।
यह जिय जानि श्याम-श्यामा-पद-कमल-संगी सिर नायौ॥

[६०]

कहा कहौं इन नैंननि की बात।
ये अलि प्रिया-वदन-अंबुज रस, अटके अनत न जात॥
जब-जब रुकत पलक संपुट लट, अति आतुर अकुलात।
लंपट लव निमेष अंतर तें, अलप कलप सत सात[5]॥
श्रुति[6] पर कंज दृगंजन[7] कुच बिच, मृगमद ह्वै न समात।
जैश्रीहित हरिवंश नाभि-सर-जलचर[8], जाँचत साँवल गात॥

१. प्रेम की दसवीं दशा २. चन्द्रमा ३. वंशी का शब्द ४. वैश्या ५. सात सौ कल्प ८. श्रवण ९. आँखों में अंजन १०. मीन।

[६१]

आजु सखी! वन में जु बने प्रभु, नाचत हैं ब्रज-मंडन।
वैस किशोर जुवति अंशनि पर, दियैं विमल भुज दंडन॥
कोमल कुटिल अलक सुठि शोभित, अवलंवित जुग गंडन।
मानहुँ मधुप थकित रस-लंपट, नील कमल के खंडन॥
हास विलास हरत सबकौ मन, काम-समूह-विहंडन[१]।
जैश्रीहित हरिवंश करत अपनौं जस, प्रगट अखिल ब्रह्मंडन॥

[६२]

खेलत रास दुलहिनी-दूलहु।
सुनहु न सखी सहित ललितादिक, निरखि-निरखि नैंननि किन फूलहु॥
अति कल मधुर महा मोंहन धुनि, उपजत हंस-सुता[२] कैं कूलहु[३]।
थेइ-थेइ वचन मिथुन मुख निसरत, सुनि-सुनि देह दशा किन[४] भूलहु॥
मृदु पदन्यास[५] उठत कुमकुम रज, अद्‌भुत बहत समीर दुकूलहु।
कबहुँ श्याम श्यामा-दसनांचल[६], कच-कुच हार छुवत भुज मूलहु॥
अति लावण्य रूप अभिनय गुन, नाहिंन कोटि काम समतूलहु।
भृकुटि विलास हास रस वरषत, जैश्रीहित हरिवंश प्रेम रस झूलहु॥

[६३]

मोंहन मदन त्रिभंगी। मोंहन मुनि मन रंगी[७]॥
मोंहन मुनि सघन प्रगट परमानँद, गुन गंभीर गुपाला।
सीस किरीट श्रवन मणि-कुंडल, उर मंडित वनमाला॥
पीतांबर तन धातु विचित्रित, कल किंकिनि कटि चंगी।
नख-मणि तरनि[८] चरन-सरसीरुह[९], मोंहन मदन त्रिभंगी॥
मोंहन वैंनु बजावै। इहि रव नारि बुलावै॥
आईं ब्रजनारि[१०] सुनत वंशी-रव, ग्रहपतिबन्धु[११] बिसारे।
दरसन मदन गुपाल मनोहर, मनसिज-ताप निवारे[१२]॥

१. नष्ट करने वाले २. श्रीजमुना जी ३. तट पर ४. क्यों नहीं ५. चरणों का रखना ६. अधर ७. मौन होकर प्रीतम की आसक्ति का चिन्तन करने वाली श्री प्रिया जू के मन को रँगने वाले ८. सूर्य ९. कमल १०. ब्रज की सीमा में ही स्थित वृन्दावन में निवास करने वाली श्रीप्रिया जू आईं ११. कमल १२. श्री प्रियाजू के दर्शन करके मदन गोपाल ने अपने मनसिज ताप दूर किये।

हरषित वदन, बंक अवलोकनि, सरस मधुर धुनि गावै।
मधुमय[१] श्याम समान अधर धरैं, मोहन वैंनु बजावै॥
रास रच्यौ वन माँहीं। विमल कलपतरु छाँहीं॥
विमल कलपतरु तीर सुपेशल, शरद रैन वर चंदा।
शीतल-मंद-सुगंध पवन बहै, तहाँ खेलत नँदनंदा॥
अद्‌भुत ताल मृदंग मनोहर, किंकिणि शब्द कराँहीं।
जमुना पुलिन रसिक रस सागर, रास रच्यौ वन माँहीं॥
देखत मधुकर केली[२]। मोहे खग-मृग बेली॥
मोहे मृग-धेनु[३] सहित सुर सुंदरि[४], प्रेम मगन पट छूटे।
उड़गन[५] चकित थकित शशि मंडल, कोटि मदन मन लूटे॥
अधर पान परिरंभन अति रस, आनँद मगन सहेली।
जै श्रीहित हरिवंश रसिक सचु पावत, देखत मधुकर केली॥

[६४]

वैंणु माई बाजै वंशीवट।
सदा बसंत रहत वृन्दावन, पुलिन पवित्र सुभग[६] जमुना तट॥
जटित क्रीट मकराकृत कुंडल, मुख-अरविंद भ्रमर मानौं लट।
दसननि कुंद-कली-छबि लज्जित, सज्जित[७] कनक समान पीत पट॥
मुनि मन ध्यान धरत नहिं पावत, करत विनोद संग बालक भट[८]।
दास अनन्य भजन रस कारन, जै श्रीहित हरिवंश प्रगट लीला नट[९]॥

[६५]

मदन मथन[१०] घन निकुंज खेलत हरि, राका रुचिर शरद रजनी।
जमुना पुलिन तट, सुर तरु के निकट, रचित रास चलि मिलि सजनी॥
बाजत मृदु मृदंग नाचत सबै सुधंग, तें न श्रवण सुन्यौ वैंणु बजनी[११]।
जैश्रीहित हरिवंश प्रभु राधिका रवन मोकौं, भावै माई जगत भगत भजनी[१२]॥

१. मधुर २. क्रीड़ा ३. मृग और उसकी मृगी ४. सुन्दरियों के स्वर ५. तारे ६. सुन्दर ७. सुशोभित ८. वीर ९. नट के समान लीला करने वाले १०. कामदेव के मन को मथने वाली ११. वेणु का शब्द १२. भजन करने वाला।

[६६]

राग-कल्यान

बिहरत दोऊ प्रीतम[१] कुंज।
अनुपम गौर-श्याम तन शोभा, वन वरषत सुख पुंज॥
अद्‌भुत खेत[२] महा मनमथ कौ, दुंदुभि भूषण-राव[३]।
जूझत सुभट परस्पर अँग-अँग, उपजत कोटिक भाव॥
भर संग्राम श्रमित अति अबला, निद्रायत[४] कल नैंन।
पिय के अंक निसंक तंक तन[५], आलसजुत कृत सैन॥
लालन मिस आतुर पिय परसत, उरू नाभि उरजात।
अद्‌भुत छटा विलोकि अवनि पर, विथकित वेपथ गात॥
नागरि निरखि मदन-विष व्यापत, दियौ सुधाधर धीर।
सत्वर[६] उठे महा मधु पीवत, मिलत मीन मिव[७] नीर॥
अबहीं मैं मुख मध्य विलोके, विंवाधर सु रसाल।
जाग्रत ज्यौं भ्रम भयौ परयौ मन, शत मनसिज कुल जाल॥
सकृदपि[८]मयि अधरामृतमुपनय[९], सुंदरि सहज सनेह।
तव पद-पंकज कौ निजु मंदिर, पालय सखि मम देह॥
प्रिया कहत कहु कहाँ हुते पिय, नव निकुंज वर राज।
सुंदर वचन रचन कत वितरत[१०], रति-लंपट बिनु काज॥
इतनौं श्रवन सुनत मानिनि मुख, अंतर[११] रह्यौ न धीर।
मति कातर[१२] विरहज[१३] दुख व्यापत, बहुतर स्वाँस समीर॥
जै श्रीहित हरिवंश भुजनि आकरषे, लै राखे उर माँझ।
मिथुन मिलत जु कछुक सुख उपज्यौ, त्रुटि लव मिव[१४] भई साँझ॥

[६७]

रुचिर राजत वधू कानन किशोरी।

१. श्रीराधा–लाल २. रण भूमि ३. शब्द ४. निद्रापूर्ण ५. सिमटे हुए अंग से ६. शीघ्र ७. जैसे ८. एक बार ही ९. अधरामृत प्रदान १०. बाँटते हैं या कहते हैं ११. हृदय १२. अधीर १३. विरह से उत्पन्न १४. चुटकी बजाने के समय के बराबर।

सरस षोड़ष[१] कियैं तिलक मृगमद दियैं,
मृगज लोचन उवटि अंग सिर खोरी॥
गंड पंडीर[२] मंडित चिकुर चंद्रिका,
मेदिनी कवरि गूँथित सुरँग डोरी।
श्रवन ताटंक कै चिवुक पर बिंदु दै,
कसूँभी कंचुकि दुरैं उरज-फल कौं री॥
वलय-कंकन-दोति[३] नखनि जावक-जोति,
उदर गुण रेख[४] पट नील कटि थोरी।
सुभग जघनस्थली क्वणित किंकिणि भली,
कोक संगीत रस-सिन्धु झकझोरी[५]॥
विविधि लीला रचित रहसि हरिवंश हित,
रसिक सिरमौर राधा-रवन जोरी।
भृकुटि निर्जित[६] मदन मंद सस्मित वदन,
किये रस-विवश घनश्याम पिय गोरी॥

[६८]

रास में रसिक मोंहन बने भामिनी।
सुभग पावन पुलिन सरस सौरभ नलिन,
मत्त मधुकर निकर[७] शरद की जामिनी॥
त्रिविधि रोचक पवन ताप दिनमणि[८] दवन,
तहाँ ठाढ़े रवन संग सत कामिनी।
ताल-वीना-मृदंग सरस नाचत सुधंग,
एक तें एक संगीत की स्वामिनी॥
राग-रागिनि जमी विपिन वरषत अमी,
अधर विंवनि रमी मुरलि अभिरामिनी।
लाग कट्‌टर[९] उरप सप्त सुर सौं सुलप[१०],
लेत सुंदर सुघर राधिका नामिनी[११]॥

१. सोलह श्रृंगार २. महुवा का फूल ३. प्रकाश ४. तीन रेखायें ५. डुबाकर निकाली हुई ६. पराजित ७. समूह ८. सूर्य ९. कट्‌टर अंग का निर्त विशेष १०. सुन्दर आलाप लेकर ११. राधिका नाम वाली।

तत्त थेई-थेई करत गतिव नौतन धरत,
पलटि डगमग ढरत मत्त गज-गामिनी।
धाइ नव रँग[1] धरी उरसि राजत खरी[2],
उभय[3] कल हंस हरिवंश घन-दामिनी॥

[६९]

मोंहनी-मोंहन रंगे, प्रेम सुरंगे,
मत्त मुदित कल, नाचत सुधंगे।
सकल कला प्रवीन, कल्यान रागिनी लीन,
कहत न बनैं, माधुरी अंग-अंगे॥
तरनि-तनया[4]-तीर, त्रिविधि सखी! समीर,
मानौं मुनि व्रत[5] धर्‌यौ, कपोती-कोकिला-कीर।
नागरि नव किशोर, मिथुन मनसि चोर[6],
सरस गावत दोऊ, मंजुल मंदर-घोर॥
कंकन-किंकिनि धुनि, मुखर[7] नूपुरनि सुनि,
जै श्रीहित हरिवंश रस वरषै नव तरुनि॥

[७०]

आजु सँभारत नाहिंन गोरी।
फूली फिरत मत्त करिनी ज्यौं, सुरत-समद्र झकोरी॥
आलस वलित अरुन धूसर मषि[8], प्रगट करत दृग चोरी।
पिय पर करुन[9] अमी रस वरषत, अधर अरुणता थोरी॥
बाँधत भृंग उरज-अंबुज[10] पर, अलक निबंध किशोरी।
संगम किरचि-किरचि[11] कंचुकि बँध, सिथिल भई कटि डोरी॥
देत असीस निरखि जुवतीजन, जिनकैं प्रीति न थोरी।
जै श्रीहित हरिवंश विपिन भूतल पर, संतत[12] अविचल[13] जोरी॥

१. श्रीलाल जी २. भली प्रकार ३. दोनों ४. यमुनाजी ५. मौन ६. मन को चुराने वाले ७. शब्दायमान ८. काजल फैले हुए ९. दयार्द्र १०. कमल ११. टूक-टूक १२. सदैव १३. अटल।

[७१]

श्याम सँग राधिका रासमंडल बनी।
बीच नँदलाल ब्रजबाल चंपक वरन,
ज्यौंव[1] घन-तड़ित[2] बिच कनक-मर्कतमनी॥
लेत गति मान[3] तत्त थेई हस्तक भेद[4],
स रे ग म प ध नि ये सप्त सुर नंदिनी।
निर्त्त रस पहिरि पट नील प्रगटित छबी,
वदन जनौं जलद में मकर की चाँदिनी[5]॥
राग-रागिनि तान-मान संगीत मत,
थकित राकेश नभ शरद की जामिनी।
जै श्रीहित हरिवंश प्रभु हंस कटि केहरी,
दूरि कृत मदन मद मत्त गज गामिनी॥

[७२]

राग-कान्हरौ

सुंदर पुलिन सुभग सुखदाइक।
नव-नव घन अनुराग[6] परस्पर, खेलत कुँवरि नागरी नाइक॥
शीतल हंससुता रस बीचिनि[7], परसि पवन सीकर[8] मृदु वरषत।
वर मंदार कमल चंपक-कुल, सौरभ सरस मिथुन मन हरषत॥
सकल सुधंग विलास परावधि[9], नाँचत नवल मिले सुर गावत।
मृगज-मयूर-मराल-भ्रमर-पिक, अद्‌भुत कोटि मदन सिर नावत॥
निर्मित कुसुम सैंन मधु पूरित, भाजन कनक निकुंज विराजत।
रजनीमुख सुखराशि परस्पर, सुरत समर दोऊ दल साजत॥
विटकुल-नृपति[10] किशोरी कर धृत[11], बुधि बल नीवी बंधन मोचत।
नेति नेति वचनामृत बोलत, प्रणय कोप प्रीतम नहिं सोचत॥

१. जैसे २. बिजली ३. तौल ४. हाथ से दिखलाये जाने वाले भाव ५. मकर राशि के चन्द्रमा की चाँदनी ६. सघन प्रेम ७. तरंगें ८. कण ९. अन्तिम सीवाँ १०. श्रीलाल जी ११. हाथ पकड़ कर।

जै श्रीहित हरिवंश रसिक ललितादिक, लता भवन रंध्रनि[1] अवलोकत।
अनुपम सुख भर भरित विवस असु[2], आनँद-वारि[3] कंठ दृग रोकत॥

[७३]

खंजन-मीन-मृगज-मद मेटत, कहा कहौं नैंननि की बातैं।
सुनि सुंदरी! कहाँ लौं सिखई, मोंहन-वशीकरन की घातैं[4]॥
बंक निसंक चपल अनियारे, अरुण-श्याम-सित रचे कहाँ तैं।
डरत न, हरत परायौ सर्वसु, मृदु मधु मिव मादिक दृग-पातैं[5]॥
नैंक प्रसन्न दृष्टि पूरन करि, नहिं मो तन चितयौ प्रमदा[6] तैं।
जैश्रीहित हरिवंश हंस कल गामिनि, भावै सो करहु प्रेम के नातैं॥

[७४]

काहे कौं मान बढ़ावत है, बालक मृग लोचनि[7]।
हौंऽव डरनि कछु कहि न सकति, इक बात सँकोचनि॥
मत्त मुरलि अंतर तव गावत, जाग्रत-सैंन तवाकृति[8] सोचनि।
जैश्रीहित हरिवंश महा मोंहन पिय, आतुर विट विरहज दुख मोचनि॥

[७५]

हौं जु कहति इक बात, सखी! सुनि काहे कौं डारति[9]।
प्राण रवन सौं क्यौंऽव करत, आगस बिनु[10] आरति॥
पिय चितवत तव चंद-वदन-तन, तू अध मुख[11] निजु चरन निहारति।
वे मृदु चिवुक प्रलोइ प्रबोधत[12], तू भामिनि कर सौं कर टारति॥
विवश अधीर विरह अति कातर, सर-औसर[13] कछुवै न विचारति।
जै श्रीहित हरिवंश रहसि प्रीतम मिलि,तृषित नैंन काहैं न प्रतिपारति[14]॥

[७६]

नागरी निकुंज ऐन[15] किशलय-दल-रचित सैन,
कोक-कला-कुशल कुँवरि अति उदार री।

१. मोखे या झरोखे २. प्राण ३. प्रेमाश्रु ४. दाव ५. कटाक्ष ६. श्रीप्रियाजी ७. मृग–छौना जैसे नेत्र वाली ८. आपका स्वरूप ९. स्वीकार न करना १०. अपराध के बिना ११. नीचे मुख करके १२. समझाते हैं १३. समय–असमय १४. पालन करना १५. भवन।

सुरत रंग अंग-अंग हाव-भाव-भृकुटि भंग,
माधुरी तरंग मथत कोटि मार री॥
मुखर नूपुरनि, सुभाव किंकिणी विचित्र राव,
विरमि-विरमि[1] नाथ वदत वर बिहार री।
लाड़िली किशोर राज हंस-हंसिनी समाज,
सींचत हरिवंश नैंन सुरस सार री॥

[७७]

लटकत फिरत जुवति रस फूली।
लता-भवन में सरस सकल निशि, पिय सँग सुरत-हिंडोरैं झूली॥
जद्यपि अति अनुराग रसासव, पान-विवस नाहिंन गति भूली।
आलस-वलित नैंन विगलित[2] लट, उर पर कछुक कंचुकी खूली॥
मरगजी[3]-माल सिथिल कटि-बंधन, चित्रित कज्जल-पीक दुकूली[4]।
जैश्रीहित हरिवंश मदन-सर-जर्जर, विथकित श्याम सजीवनि मूली॥

[७८]

सुधंग नाँचत नवल किशोरी।
थेई-थेई कहति चहति प्रीतम दिशि, वदन-चंद्र मनौं त्रिषित चकोरी॥
तान बंधान मान में नागरि, देखत श्याम कहत हो हो री।
जैश्रीहित हरिवंश माधुरी अँग-अँग, बरबस लियौ मोंहन चित चोरी॥

[७९]

रहसि-रहसि मोंहन पिय के सँग, री! लड़ैती अति रस लटकति।
सरस सुधंग अंग में नागरि, थेई-थेई कहति अवनि पद पटकति॥
कोक-कला-कुल जानि शिरोमणि, अभिनय कुटिल भुकुटियनि मटकति।
विवश भये प्रीतम अलि लंपट, निरखि करज नासा पुट चटकति॥
गुन गन रसिकराइ चूड़ामणि, रिझवत पदिक हार पट झटकति।
जैश्रीहित हरिवंश निकट दासीजन, लोचन-चषक रसासव[5] गटकति[6]॥

१. विश्राम करो, विश्राम करो २. छूटी हुई ३. सिकुड़ी या मुरझी ४. ओढ़नी ५. रसामृत ६. पान करती हैं।

[८०]

बल्लवी[1] सु कनक-बल्लरी[2] तमाल स्याम संग,
लागि रही अंग-अंग मनोभिरामिनी।
वदन जोति मनु मयंक अलक तिलक छबि कलंक,
छपति श्याम अंक मनौं जलद-दामिनी॥
विगत वास[3] हेम-खंभ[4] मनु भुवंग वैंनी दंड,
पिय के कंठ प्रेम-पुंज कुंज कामिनी।
जै श्री शोभित हरिवंश नाथ साथ सुरत आलसवंत,
उरज-कनक-कलश राधिका सु नामिनी॥

[८१]

राग-केदारौ

वृषभानुनंदिनी मधुर कल गावै।
विकट औघर तान चर्चरी ताल सौं,
नंदनंदन मनसि मोद उपजावै॥
प्रथम मज्जन चारु चीर कज्जल तिलक,
श्रवण कुंडल वदन चंदनि लजावै।
सुभग नक-बेसरी रतन-हाटक-जरी,
अधर-बंधूक[5] दसन-कुंद चमकावै॥
वलय[6] कंकन चारु उरसि राजत हार,
कटिऽव किंकिनी चरन नूपुर बजावै।
हंस कल गामिनी मथत मद कामिनी,
नखनि मदयंतिका[7]-रंग रुचि द्यावै॥
निर्त-सागर रभसि रहसि नागर नवल,
चंद-चाली[8] विविध भेदनि जनावै।
कोक-विद्या-विदित[9] भाइ-अभिनय-निपुन,
भ्रू-विलासनि मकरकेतनि[10] नचावै॥

१. श्रीप्रियाजी २. स्वर्ण लता ३. वस्त्र-रहित ४. सोने के खंभ ५. दुपहरिया का फूल ६. हाथ का कड़ूला ७. मेंहदी ८. निर्त का भेद विशेष ९. कोक विद्या के ज्ञाता १०. कामदेव।

निविड़ कानन भवन बाहु रंजित रवन,
सरस आलाप सुख-पुंज वरषावै।
उभय संगम-सिन्धु सुरत-पूषणबन्धु,
द्रवत[1] मकरंद हरिवंश-अलि पावै॥

[८२]

नागरता[2] की रासि किशोरी।
नव नागर कुल मौलि[3] साँवरौ, बरबस कियौ चितै मुख मोरी॥
रूप रुचिर, अँग-अंग माधुरी, बिनु भूषण भूषित ब्रज गोरी।
छिन-छिन कुशल सुधंग-अंग में, कोक-रभस रस-सिंधु झकोरी॥
चंचल रसिक मधुप मोंहन-मन, राखे कनक-कमल कुच-कोरी।
प्रीतम नैंन जुगल खंजन खग, बाँधे विविध निबंधन डोरी॥
अवनी उदर नाभि-सरसी[4] में, मनौं कछुक मादिक-मधु घोरी।
जैश्रीहित हरिवंश पिवत सुंदर वर, सींव सुदृढ़ निगमनि की[5] तोरी॥

[८३]

छाँड़ि दै मानिनी! मान मन धरिवौ।
प्रणत[6] सुंदर-सुघर प्राणबल्लभ नवल,
वचन आधीन सौं इतौ कत करिवौ॥
जपत हरि विवश तव नाम प्रतिपद विमल,
मनसि तव[7] ध्यान तें निमिष नहिं टरिवौ।
घटत पल-पल सुभग शरद की जामिनी,
भामिनी सरस अनुराग दिशि ढरिवौ॥
हौं जु कछु कहति इक बात सुनि मानि सखि,
सुमुख बिनु काज घन विरह दुख भरिवौ।
मिलत हरिवंश हित कुंज किशलय सैंन,
करत कल केलि सुख-सिंधु में तरिवौ॥

१. झरता है २. चतुरता ३. मस्तक का मुकट मणि ४. छोटे सरोवर ५. वेदों की ६. दीन ७. तुम्हारा।

[८४]

आजु देखियत है हो, प्यारी जू रंग भरी।
मो पै न दुरत चोरी, वृषभानु की किशोरी,
सिथिल कटि की डोरी, नंद के लालन सौं सुरत लरी[१]॥
मोतियन लर टूटी, चिकुर चंद्रिका छूटी,
रहसि रसिक लूटी, गंडनि पीक परी।
नैंननि आलस बस, अधर विंव न रस,
पुलकि प्रेम परस, जै श्रीहित हरिवंश री राजत खरी[२]॥

❁ इति श्रीहित चौरासीजी सम्पूर्ण ❁

१. प्रेम–युद्ध किया २. अत्यन्त सुशोभित।

श्रीहित चौरासी–फलस्तुति

श्रीहित सेवक जी कृत – दुपई

समुझौ श्रीहरिवंश सु वानी। रसद मनोहर सब जग जानी॥
कोमल-मधुर-ललित पद श्रैंनी। रसिकन कौं जु परम सुखदैंनी॥
श्रीहरिवंश नाम उच्चारा। नितबिहार रस कह्यौ अपारा॥

गो. श्रीहित वनचन्द्र जी कृत– छप्पय

भव-जल-निधि कौ नाव, काम-पावक[१] कौ पानी।
प्रेम-भक्ति कौ मूल, मोद-मंगल-सुखदानी॥
निगम-सार-सिद्धान्त, संत-विश्राम[२] मधुर वर।
रसिकनि कौ रस-सार, सकल अक्षर रस कौ घर॥
चौरासी श्रीहित हरिवंश कृत, पढ़ै-सुनैं निशि-भोर।
छुटै चौरासी भ्रमनि तें, निरखै जुगल किशोर॥

गो. श्रीहित रूपलाल जी कृत–

निरखै जुगल किशोर, भोर अरु रैंन न जानैं।
पियैं रूप-रस-मत्त भयौ, कछु मनहिं न आनैं॥
प्रेम-लक्षणा-भक्ति, होइ हिय आनँदकारी।
अरु वृन्दावन-वास, सखी सुख कौ अधिकारी॥
कुंज महल की टहल-सुख, संपति दंपति पाइहै।
जैश्रीरूपलाल हित प्रीति सौं, जो चौरासी गाइहै॥

श्रीहित धरनीधरदास जी कृत– दोहा

वानी हित हरिवंश की, सागर तें गम्भीर।
कही गई मोपै तिती, जितौ गहै खग नीर॥
जुग रस माते रसिकवर, तिनमें होइ जु वास।
हित धरनीधरदास की, पुरवौ येई आस॥

१. काम की अग्नि २. संत जनों के लिये परम सुख का स्थान।

श्रीहित हरिजीमल जी कृत–

छःपद विभास माँझ सात हैं विलावल में,
टोड़ी में चतुर आसावरी में द्वै बने।
सप्त हैं धनासिरी में जुगल बसंत केलि,
देवगंधार पंच-दोइ रस सौं सने॥
सारँग में षोड़स हैं चारि ही मलार, एक-
गौड़ में सुहायौ, नव गौरी रस में भने।
षट[1] कल्यान निधि[2] कान्हरे केदारे वेद[3]-
वाणी हित जू की सब चौदह राग में गने॥

श्रीहित प्रेमदास जी कृत– दोहा

पार न पावत गगन कौ, उड़त गरुड़ खग आदि।
त्यौं चतुरासी पदनि में, मति प्रमान अहलाद॥
चतुरासी-मणि की रची, माला हित-गुन माँहिं।
सकल रसिक हिय में धरौ, नित अवगाहौ याहि॥
रस-मिडवारी तामें अक्षर अभूत तरु -
गोदे हैं सरस मात्रा शाखा अनुप्रास हैं।
उक्ति-जुक्ति-पत्र चारु उपमा अपार फूल
अर्थ फल प्रिया-लाल रस सु विलास हैं॥
रसिकनि-हियौ-भूमि तामें राजै कल्पवृक्ष -
रूप-नीर सींच्यौ गिरा-हित हित-रासि है।
उत्तम ही फल देत रुचि-रुचि अनुसार,
'प्रेमदासिनि' के सुख-छाया में निवास है॥

श्रीहित जुगलदास जी (गो. इन्द्रपति-शिष्य) कृत – दोहा

श्रीमत् चौरासी करी, नेह प्रेम कौ खेत।
अक्षर-अक्षर मधुर रस, सरस करनि हिय चेत॥
जो कोउ नित्त पढ़ै-सुनै, गावै मन हुलसाय।
पावै नित्यबिहार-सुख, वृन्दावन सुखदाय॥

१. छह २. नव या नौ पद ३. चार।

कवित्त

हित जू की वानी प्रेम भरी रसरीति-सानी,
'जुगल' दरसानी सु सनेह सरसानी है।
मधुर रस-दानी मनहरन छबि दम्पति की,
भरी केलि सम्पति जु अति सुखदानी है॥
नित्य नर पढ़ै जोई प्रीति रंग बढ़ै उर,
मोद बरसानी सो प्रेम उमदानी है।
वृन्दावन रानी नव लाल की वखानी केलि,
सरसानी रसिकनि-हिय सब जग जानी है॥
हित जू की वानी प्रेम-सिन्धु कौ अगाध महा,
'जुगल' रस-केलि सौं भरयौ लहराई है।
कोटि-कोटि भावन के रतन प्रकाशमई,
रहत गम्भीर तामें रंग सरसाई है॥
बिना कृपा रसिकशिरोमनि की पावै कौंन,
और बहु भाँति करौ केतिक उपाई है।
कहाँ लौं वखानौं एक मुख तें बड़ाई वानी,
प्रिया-लाल सुनत ही बस ह्वै जाई हैं॥

कुण्डलियाँ

वानी रसिक-नरेश की, रस आनँद कौ मूल।
जो कोउ नित्त पढ़ै-सुनै, रहै दम्पति कैं कूल॥
रहै दम्पति कैं कूल, केलि-सुख कुंज बिहारै।
रंग भरी मुसिकानि, दुहुँनि की नैंन निहारै॥
रास-विलास हुलास नित, रहत नई-नई फूल।
आनँद रंग बढ़ावनी, दूरि करनि दुख-सूल॥

गो. श्रीहित किशोरीलाल जी कृत– दोहा

जग जानी छानी नहीं, मानी प्यारी-पीय।
हित-वानी सानी सुरस, सुखदानी सब जीय॥

कवित्त

प्यारी-पिय मानी सुखदानी रस-सानी महा,
बहत प्रवाह सर अमी अवतंश की।
अक्षर अथाह, थाह कोऊ कृपापात्र पावै,
गावै निशि-द्यौस, पावै गति परम हंस की॥
हित कौ वरन रूप-माधुरी अनूप देखि,
मिटै अघ-ताप सबै वंश अंश-अंश की।
वेद सब शास्त्रनि-पुराननि कौ सार जानौं,
जगत प्रसंश वानी हित हरिवंश की॥

चाचा श्रीहित वृन्दावनदास जी कृत– चौपाई

राधासुधानिधि वानी द्रयौ। पुनि चौरासी पद निर्मयौ॥
लीला जुगल दरसि ज्यौं परी। तैसैं पद करि वरनन करी॥
दिन-दिन के कौतिक जु अनंत। हिलमिलि करैं जु राधाकन्त॥
तिहिं सुख मरमिनि महलिनि अली। पर उपकार कथ्यौ विधि भली॥
हियौ-सरोवर सुभर जु भरयौ। तब रस-बल करि रसना झरयौ॥
इहिं कारन जग - प्रादुर्भाव। स्वामिनि-कृपा सु बन्यौं बनाव॥
तुस कूटत कर्मठ अरु ग्यानी। यह रस-वैभव नहिं पहिचानी॥
यह रस जुगल-कृपा ही साधि। प्रचुर कियौ दम्पति आराधि॥
याके श्रोता - वक्ता न्यारे। पथ अनन्य रस विलसनिहारे॥
यह रस-पद्धति जतननि रची। धर्मिनु हित सुख-सम्पति सची॥
अपु मुख ही अस वरनन कीयौ। ललना-लाल सिरायौ हीयौ॥
करुना बस पद-पद उच्चरयौ। गिरा गम्भीर उमगि रस झरयौ॥

जुगल-रस-भेद चितावनि परम कृपा-वपु, धरयौ व्यास कैं सदन।
निगम-दुरी आगम हू दुर्लभ, केलि लतागृह, सो जु प्रकाशी वदन॥
लीला ललित राधिकाबल्लभ, सुमति रची चतुरासी पदन।
वृन्दावन हित रूप सुधानिधि कृष्ण-प्रिया की,भाव गहर जाकी हद न॥

श्रीहित वृन्दावनदास जी (पटना वाले) कृत – छप्पय

निगम-अगोचर बात, कहा कहुँ अतिहि अनौखी।
उभय मीत की प्रीति-रीति, चोखी तें चोखी[1]॥
वृन्दावन छबि देखि-देखि, हुलसत-हुलसावत।
जल-तरंगवत् गौर-श्याम, विलसत-विलसावत॥
ललितादिक निजु सहचरी, निरखि हरषि बलि जात नित।
चतुरासी हित-पद कहैं, चतुरनि कौ यह परम वित[2]॥

श्रीकिशोरीअली (जगन्नाथ भट्ट) जी कृत – पद

जै जै चतुरासी रस-रासी।
श्रीहित हरिवंश-चन्द्र तें प्रगटी, दम्पति-प्रेम-प्रकाशी॥
ललित केलि की सलिता मानौं, उमड़ि चली अनियासी।
रसिक उपासक रुचि सौं पीवत, जीवत श्रीवन-वासी॥
वक्ता-श्रोता कौं अपनावैं, नवल निकुंज विलासी।
ताही छिन परिकर तन दैकैं, करत 'किशोरी' दासी॥

श्रीगोपाल कवि कृत – छन्द

षट महिना ही के हित जी नें, ग्रन्थ सुधानिधि कीनौं।
चौरासी पद और कहे पुनि, जमुनाष्टक कहि दीनौं॥

गो. श्रीहित मोहनलाल जी कृत – पद

नमो-नमो चतुरासी वानी।
जा मधि हित रस कहत न आवै, जुगल-तरंग सिन्धु हित जानी॥
नमो-नमो हित-खेल-खिलारी, मुकुलित कमल प्रमल[3] घुमड़ानी।
रूमि झूमि हित-भँवरा घूँटत, जैश्रीमोहनलाल-बाल उमड़ानी॥

श्रीहित स्वामिनीशरण जी कृत –

जै-जै-जै-जै हित चतुरासी।
जिनमें श्रीहित प्रभु जू अपनी, अति आशक्ति प्रकाशी॥
हित-समुद्र की द्वै तरंग, राधा-बल्लभ रस-रासी।
हित स्वामिनी शरन सब ऊपर, अविचल करौ विलासी॥

१. श्रेष्ठ से श्रेष्ठ २. धन ३. परिमल या सुगन्ध

श्रीहित परमानन्ददासजी कृत–

चतुरासी मंत्र चतुरासी पढ़ै-सुनै कोऊ,
चतुरासी कृपा हित चतुरासी गावहीं।
चतुर-सिरोमनि राधा रूप सो अनूप भाँति,
मोंहन ललचानि दृग देखैं ते पावहीं॥
प्रानप्यारी हितअलि जोई कहैं करैं सोई,
सेज-सुख राज हरिवंश मन भावहीं।
'परमानंद' प्रेम-पन्थ लिखौ यह हित हियैं,
चतुरासी पढ़ैं चतुर जुगल मिलि आवहीं॥

चौरासी बाचं-सुनै, गावै प्रीति लगाय।
पढ़ै-पढ़ावै प्रेम रस, 'परमानंद' रँगाय॥
जग जानी छानी नहीं, रसिकनि-जीवनि जीय।
हित-वानी सानी सुरति, मानी प्यारी-पीय॥

जगन्नाथ प्रसाद जी 'श्यामादास जी' कृत –

निर्मल श्रीगंगा सी पाप हरिवे कौं जानि,
भव-सागर-तरनी अखंड पद दानी है।
माया-तम हरिवे कौं प्रगट प्रभाकर सी,
प्रेम-मधु दीवे कौं सरद-शशि जानी है॥
बोध करिवे कौं यह कोटि ब्रह्म-विद्या सी,
श्रीहरि मिलाइवे कौं सतगुरु प्रमानी है।
मो से पतित तारिवे कौं सर्वदा समर्थ, ऐसी–
रची हरिवंशजी ने चौरासी वानी है॥
प्रेम बरसाइवे कौं भक्ति दरसाइवे कौं,
धर्म परसाइवे कौं मोद मुद दानी है।
आनँद बढ़ाइवे कौं दोष-दुख ढाइवे कौं,
दम्पति-मिलाइवे कौं एक ही वखानी है॥

काल सें बचाइवे कौं मोह के मिटाइवे कौं,
काम हू नसाइवे कौं अद्‌भुत प्रमानी है।
अज्ञता विहाइवे कौं माया तें छुटाइवे कौं,
प्रगटी हरिवंशजू की चौरासी वानी है॥

श्यामा-श्याम अद्‌भुत बिहार सौं सनी है जोइ,
प्रेम की प्रतीति रीति गूढ़ दरसानी है।
जग में प्रभाव जाकौ प्रगट ही प्रकाशित है,
मिथुन बस करिवे कौं वसीकरन मानी है॥
'श्यामादास' रसिकनि की प्रान-धन एई आहि,
याके बल आन धर्म रीति नहिं जानी है।
मेरैं जानि चौरासी-जोनि-दुःख मिटाइवे कौं,
विरची हरिवंशजू नें चौरासी वानी है॥

पहिरहु सुदृढ़ उपास, प्रीति जुत हित-चौरासी।
श्रीहरिवंश कृपाल, माल अनुपम जु प्रकाशी॥
दिव्य रसाम्बुध तें जु, रत्न पद चार असी हैं।
प्रेम सु गुन में पुही, यहै उर रसिक बसी है॥
व्रत अनन्य संम्हार जिहिं, आस आन नाहीं करी।
तिहि गोद 'दासि श्यामा' सदा, दम्पति-सम्पति सौं भरी॥

रसिक अनन्यनि प्रति यहै, विनती करहुँ निहोर।
श्रीहित जी के पद-कमल, बसहिं हृदय-सर मोर॥

श्रीहित राधिकाचरण जी 'ढोंगी बाबा' कृत– दोहा

श्रीव्याससुवन-विरचित सु पद, चतुरासी वानी जु।
प्रीति-प्रतीति जु करि गवै, कृपा भई मानी जु॥
कृपा होहि जब गाइहौं, बिनु सु कृपा को गाइ।
ओतप्रोत सु जानियैं, महतनि दिये बताइ॥

वानी श्रीहरिवंश की, गावहु रसिक प्रवीन।
सेवकवानी में जु यह, सेवक आज्ञा कीन॥

श्रीहित मदनमोहनदास जी कृत – चौपाई

श्रीहित वानी रस की मूरति। बन्दौं ताहि, यथा मति सूझति॥
वस्तु स्वरूप अहै चतुरासी। बन्दौं पुनि-पुनि अति सुखरासी॥
जाकैं पठन मात्र सौं प्यारे। छुटैं चौरासी चक्कर सारे॥
रस में परै विचार जु वाकौ। भाग्य कहि सकै कौंन जु ताकौ॥
रस कौ नित बिहार तहँ गायौ। श्रुति हू जाकौं देखि न पायौ॥
रस की प्रबल धार तहँ बहै। कृपा करै सोई जन लहै॥
रस की धार लही जिन प्रानी। दुःख-कथा तब सबै नसानी॥
रस की कथा परै मन जाकौ। रस सौं विलग न जानहु ताकौ॥
रस की कथा जबै सुनि पाई। चाह बढ़ै दिन-रात सवाई॥
दिन दूनी अरु रात चौगुनी। नेह-बेलि बढ़ि होय सौ गुनी॥
पुनि तौ फल वेगहि ह्वै आवै। रसहि चाखि निजु भाग्य मनावै॥
बिसरि जाय सब जग कौ नातौ। ह्वै अभिन्न रस के रँग रातौ॥
रास-विलास लखै मन माँहीं। अन्य और अभिलाषा जाहीं॥
या तन में रहिकैं हूँ इहिं विधि। भाव-देह सौं पैहै हित-निधि॥
रस-प्रवाह की धार छोड़िकैं। जगत न देखूँ वदन मोड़िकैं॥

श्रीहित किशोरीशरण 'अलि' जी कृत– दोहा

दम्पति, दम्पति-केलि धन, तुमहिं धनी दातार।
जिन पाई तुम दत लही, रसिकनि कही पुकार॥
तुम हिय केलि-उदधि बहत, बीची तहँ न समाहिं।
वानी ह्वै बाहिर कढ़ी, चतुरासी पद माँहिं॥
प्रति बीचिन वारिध भरे, भाव अगाध अगम्य।
औघट घाट विकट निपट, तुव करुणा करि गम्य॥

* श्रीहित विधुर्विजयते *

श्रीहित स्फुटवाणी

[१]

सवैया –

द्वादश चन्द्र, कृतस्थल मंगल, बुद्ध विरुद्ध, सुर-गुरु बंक।
यहि दशम्म-भवन्न भृगू-सुत, मंद सु केतु जनम्म के अंक॥
अष्टम राहु चतुर्थ दिवामणि, तौ हरिवंश करत नहिं शंक।
जो पै कृष्ण-चरण मन अर्पित, तौ करि हैं कहा नवग्रह रंक॥

[२]

भानु दशम्म, जनम्म निशापति, मंगल-बुद्ध शिवस्थल लीके।
जो गुरु होंहिं धरम्म-भवन्न के, तौ भृगु-नन्द सु मन्द नवी के॥
तीसरौ केतु समेत विधु-ग्रस, तौ हरिवंश मन क्रम फीके।
गोविन्द छाँड़ि भ्रमंत दशौं दिशि, तौ करि हैं कहा नवग्रह नीके॥

[३]

छप्पय –

ना जानौं छिन अन्त कवन बुधि घटहि प्रकाशित।
छुटि चेतन जु अचेत तेउ मुनि भये विष वासित॥
पाराशर सुर इन्द्र कलप कामिनि मन फंद्या।
परिव देह दुख द्वन्द कौंन क्रम काल निकंद्या॥
इहिं डरहिं डरपि हरिवंश हित, जिनव भ्रमहि गुण सलिल पर।
जिहिं नामनि मंगल लोक तिहुँ, सु हरि-पद भजि न विलम्ब कर॥

[४]

सवैया –

तू बालक नहिं भर्यौ सयानप, काहैं कृष्ण भजत नहिं नीके।
अतिव सु मिष्ट तजिव सुरभिन-पय, मन बंधत तन्दुल जल फीके॥
जै श्रीहित हरिवंश नरक गति दुरभर, यम द्वारैं कटियत नक छीके।
भव अज कठिन मुनीजन दुर्लभ, पावत क्यौंव मनुज तन भीके॥

[५]

कुण्डलियाँ –

चकई! प्रान जु घट रहैं, पिय-बिछुरन्त निकज्ज।
सर-अन्तर अरु काल निशि, तरफि तेज घन गज्ज॥
तरफि तेज घन गज्ज, लज्ज तुहि वदन न आवै।
जल-विहून करि नैंन, भोर किहिं भाय दिखावै॥
जै श्रीहित हरिवंश विचारि, वाद अस कौंन जु बकई।
सारस यह सन्देह, प्रान घट रहैं जु चकई॥

[६]

सारस! सर बिछुरन्त कौ, जो पल सहै शरीर।
अगिनि अनंग जु तिय भखै, तौ जानै पर पीर॥
तौ जानै पर पीर, धीर धरि सकहि बज्र तन।
मरत सारसहिं फूटि, पुनि न परचौ जु लहत मन॥
जै श्रीहित हरिवंश विचारि, प्रेम विरहा बिनु वा रस।
निकट कन्त नित रहत, मरम कह जानैं सारस॥

[७]

छप्पय –

तैं भाजन कृत जटित विमल चन्दन कृत इन्धन।
अमृत पूरि तिहिं मध्य करत सरषप खल रिन्धन॥
अद्‌भुत धर पर करत कष्ट कंचन हल वाहत।
वारि करत पावार मन्द वोवन विष चाहत॥
जै श्रीहित हरिवंश विचारिकैं, मनुज देह गुरु चरन गहि।
सकहि तौ सब परपंच तजि, कृष्ण-कृष्ण गोविन्द कहि॥

[८]

पद–

तातें भैया! मेरी सौंह कृष्ण गुण संचु।
कुत्सित बाद विकारहिं पर धन, सुनि सिख मन्द पर तिय वंचु।
मणिगन-पुंज ब्रजपति छाँड़त, हित हरिवंश कर गहि कंचु॥

पाये जानि जगत में सब जन, कपटी कुटिल कलियुग-टंचु।
इहिं परलोक सकल सुख पावत, मेरी सौंह कृष्ण गुण संचु॥

[९]

अरिल्ल –

मानुष कौ तन पाय, भजौ ब्रजनाथ कौं।
दर्वी लैं कैं मूढ़, जरावत हाथ कौं॥
जै श्रीहित हरिवंश प्रपंच, विषय रस मोह के।
बिनु कंचन क्यौं चलैं, पचीसा लोह के॥

[१०]

पद-राग-विलावल –

तू रति रंग भरी देखियत है री राधे,
तैं रहसि रमी मोहन सौंज्व रैंन।
गति अति शिथिल प्रगट पलटे पट,
गौर अंग पर राजत ऐंन॥
जलज कपोल ललित लटकति लट,
भृकुटि कुटिल ज्यौं धनुष धृत मैंन।
सुन्दरि रहिव कहिव कंचुकि कत,
कनक-कलश कुच बिच नख दैंन॥
अधर विम्ब दलमलित आलस जुत,
अरु आनन्द सूचत सखि नैंन।
जै श्रीहित हरिवंश दुरत नहिं नागरि,
नागर-मधुप मथत सुख सैंन॥

[११]

आनँद आजु नन्द कैं द्वार।
दास अनन्य भजन रस कारन, प्रगटे लाल मनोहर ग्वार॥
चन्दन सकल धेनु तन मंडित, कुसुम-दाम-रंजित आगार।
पूरन कुम्भ बने तोरन पर, बीच रुचिर पीपर की डार॥
जुवति-जूथ मिलि गोप विराजत, बाजत पणव-मृदंग सुतार।
जै श्रीहित हरिवंश अजिर वर वीथिनु, दधि-मधि-दुग्ध-हरद के खार॥

[१२]

राग-धानाश्री–

मोहन लाल कैं रँग राँची।
मेरैं ख्याल परौ जिन कोऊ, बात दशौं दिशि माँची॥
कंत अनन्त करौ जो कोऊ, बात कहौं सुनि साँची।
यह जिय जाहु भलैं सिर ऊपर, हौऊ प्रगट ह्वै नाँची॥
जाग्रत-सैंन रहत उर ऊपर, मणि कंचन ज्यौं पाची।
जै श्रीहित हरिवंश डरौं काके डर, हौं नाहिंन मति काची॥

[१३]

मैं जु मोंहन सुन्यौ वैंनु गोपाल कौ।
व्योम मुनि यान सुर-नारि विथकित भईं,
कहत नहिं बनत कछु भेद यति ताल कौ॥
श्रवन कुण्डल छुरित रुरत कुन्तल ललित,
रुचिर कस्तूरि चन्दन तिलक भाल कौ।
चन्द गति मन्द भई निरखि छबि काम गई,
देखि हरिवंश हित भेष नँदलाल कौ॥

[१४]

आजु तू ग्वाल गोपाल सौं खेलि री।
छाँड़ि अति मान, वन चपल चलि भामिनी,
तरु तमाल सौं अरुझि कनक की बेलि री॥
सुभट सुन्दर ललन, ताप पर बल दमन,
तूऊ ललना रसिक काम की केलि री।
वैंनु कानन कुनित, श्रवन सुन्दरि सुनत,
मुक्ति सम सकल सुख पाय पग पेलि री॥
विरह-व्याकुल नाथ, गान गुन जुवति तव,
निरखि मुख, काम कौ कदन अवहेलि री।
सुनत हरिवंश हित, मिलत राधा रमन,
कंठ भुज मेलि, सुख-सिन्धु में झेलि री॥

[१५]

वृषभानुनन्दिनी राजति हैं।
सुरत-रंग-रस भरी भामिनी, सकल नारि सिर गाजति हैं॥
इत उत चलति परत दोऊ पग, मद गयंद गति लाजति हैं।
अधर निरंग, रंग गंडनि पर, कटक काम कौ साजति हैं॥
उर पर लटक रही लट कारी, कटिव किंकिनी बाजति हैं।
जै श्रीहित हरिवंश पलटि प्रीतम पट, जुवति जुगति सब छाजति हैं॥

[१६]

चलौ वृषभानु गोप के द्वार।
जनम लियौ मोंहन हित श्यामा, आनँद-निधि सुकुमार॥
गावति जुवति मुदित मिलि मंगल, उच्च मधुर धुनि धार।
विविध कुसुम कोमल किशलय-दल, शोभित वन्दनवार॥
विदित वेद-विधि विहित विप्रवर, करि स्वस्तिनु उच्चार।
मृदुल मृदंग-मुरज-भेरी-डफ, दिवि दुन्दुभि रवकार॥
मागध सूत बंदी चारन जस, कहत पुकार-पुकार।
हाटक-हीर-चीर-पाटम्बर, देत सँभार-सँभार॥
चंदन सकल धेनु-तन मंडित, चले जु ग्वाल सिंगार।
जै श्रीहित हरिवंश दुग्ध-दधि छिरकत, मध्य हरिद्रागार॥

[१७]

राग-गौरी–

तेरौई ध्यान राधिका प्यारी, गोवर्द्धनधर लालहिं।
कनक लता सी क्यौं न विराजति, अरुझी श्याम तमालहिं॥
गौरी गान सु तान-ताल गहि, रिझवति क्यौं न गुपालहिं॥
यह जोवन कंचन-तन ग्वालिन, सफल होत इहिं कालहिं॥
मेरैं कहे विलम्ब न करि सखि, भूरि भाग अति भालहिं॥
जै श्रीहित हरिवंश उचित हौं चाहति, श्याम कंठ की मालहिं॥

[१८]

आरती मदन गोपाल की कीजियैं।
देव-ऋषि-व्यास-शुकदास सब कहत निजु,
क्यौं न बिनु कष्ट रस-सिन्धु कौं पीजियैं॥

अगर करि धूप कुमकुम मलय रंजित नव,
वर्तिका घृत्त सौं पूरि राखौ॥
कुसुम कृत माल नँदलाल कैं भाल पर,
तिलक करि प्रगट जस क्यौं न भाखौ॥
भोग प्रभु जोग भरि थार धरि कृष्ण पै,
मुदित भुज-दण्ड वर चौंर ढारौ॥
आचमन पान हित, मिलत कर्पूर-जल,
सुभग मुख वास, कुल-ताप जारौ॥
शंख दुन्दुभि पणव घंट कल वैंनु रव,
झल्लरी सहित सुर सप्त नाँचौ॥
मनुज-तन पाइ इहिं दाइ ब्रजराज भजि,
सुखद हरिवंश प्रभु क्यौं न जाँचौ॥

[१९]

आरति कीजै श्याम सुन्दर की।
नन्द के नन्दन राधिका वर की॥
भक्ति करि दीप प्रेम करि बाती।
साधु-संगति करि अनुदिन राती॥
आरति जुवति-जूथ मन भावै।
श्याम लीला श्रीहरिवंश हित गावै॥

[२०]

रहौ कोऊ काहू मनहिं दियैं।
मेरैं प्राणनाथ श्रीश्यामा, शपथ करौं तृण छियैं॥
जे अवतार कदम्ब भजत हैं, धरि दृढ़ व्रत जु हियैं।
तेऊ उमगि तजत मर्यादा, वन बिहार रस पियैं॥
खोये रतन फिरत जे घर-घर, कौंन काज अस जियैं।
जै श्रीहित हरिवंश अनत सचु नाहीं, बिनु या रजहिं लियैं॥

[२१]

हरि रसना राधा-राधा रट।
अति अधीन आतुर जद्दपि पिय, कहियत हैं नागर नट॥

संभ्रम द्रुम, परिरंभन कुंजन, ढूँढ़त कालिन्दी-तट।
विलपत, हँसत, विषीदत, स्वेदित, सतु सींचत अँसुवनि वंशीवट॥
अंगराग परिधान वसन, लागत ताते जु पीतपट।
जै श्रीहित हरिवंश प्रसंशित श्यामा, दै प्यारी कंचन-घट॥

[२२]

राग-कल्याण –

लाल की रूप माधुरी नैंननि निरखि नैंक सखी।
मनसिज-मनहरन हास, साँवरौ सुकुमार रासि,
नख-सिख अँग-अंगनि उमगि, सौभग-सींव नखी॥
रँगमँगी सिर सुरँग पाग, लटकि रही वाम भाग,
चंपकली कुटिल अलक बीच-बीच रखी।
आयत दृग अरुन लोल, कुंडल मंडित कपोल,
अधर दसन दीपति की छबि, क्यौं हूँ न जात लखी॥
अभयद भुज-दंड मूल, पीन अंश सानुकूल,
कनक-निकष लसि दुकूल, दामिनी धरषी।
उर पर मंदार-हार, मुक्ता-लर वर सुढार,
मत्त दुरद-गति, तियन की देह-दशा करषी॥
मुकुलित वय नव किशोर, वचन-रचन चित के चोर,
मधुरितु पिक-शाव नूत-मंजरी चखी।
जै श्री नटवत हरिवंश गान, रागिनी कल्याण तान,
सप्त स्वरन कल इते पर, मुरलिका वरखी॥

[२३]

राग-मलार–

दोउ जन भींजत अटके बातन।
सघन कुंज कैं द्वारैं ठाढे, अम्बर लपटे गातन॥
ललिता ललित रूप-रस भीनी, बूँद बचावति पातन।
जै श्रीहित हरिवंश परस्पर प्रीतम, मिलवत रति रस घातन॥

[२४]

दोहा –

सबसौं हित निष्काम मति, वृन्दावन विश्राम।
श्रीराधाबल्लभलाल कौ, हृदय ध्यान मुख नाम॥
तनहिं राखि सतसंग में, मनहिं प्रेम रस भेव।
सुख चाहत हरिवंश हित, कृष्ण-कल्पतरु सेव॥
निकसि कुंज ठाढे भये, भुजा परस्पर अंश।
श्रीराधाबल्लभ-मुख-कमल, निरखि नैंन हरिवंश॥
रसना कटौ जु अन रटौं, निरखि अन फुटौ नैंन।
श्रवण फुटौ जो अन सुनौं, बिनु राधा-जस बैंन॥

❁ इति श्रीहित स्फुटवाणी संपूर्ण ❁

✻ श्रीहित राधिकाबल्लभो जयति ✻

✻ श्रीहित हरिवंश चन्द्रो जयति ✻

श्रीहित सेवक वाणी

✻ श्रीहित जस विलास प्रकरण ✻

मूल– त्रिपदी छन्द

श्रीहरिवंश-चन्द्र शुभ नाम। सब सुख-सिन्धु प्रेम रस धाम॥
याम घटी बिसरै नहीं॥
यह जु परयौ मोहि सहज सुभाव। श्रीहरिवंश नाम रस चाव॥
नाव सुदृढ़ भव तरन कौं॥
नाम रटत आई सब सोहि। देहु सुबुद्धि कृपा करि मोहि॥
पोहि सु गुन माला रचौं॥
नित्य सुकंठ जु पहिरौं तासु। जस वरनौं हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥१॥

श्रीवृन्दावन वैभव जिती। वरनत बुद्धि प्रमानौ किती॥
तिती सबै हरिवंश की॥
सखी-सखा क्यौं कहौं निवेरि। तौ मेरे मन की अवसेरि॥
टेरि सकल प्रभुता कहौं॥
हरि-हरिवंश भेद नहिं होय। प्रभु ईश्वर जानैं सब कोइ॥
दोइ कहैं न अनन्यता॥
विश्वम्भर सब जग आभास। जस वरनौं श्रीहरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥२॥

जन्म-कर्म गुण रूप अपार। बाढ़ै कथा कहत विस्तार॥
बार-बार सुमिरन करौं॥
हौं लघु मति जु अन्त नहिं लहौं। बुद्धि प्रमान कछू कथि कहौं।
रहौं शरण हरिवंश की॥
सो धौं कहि मोहि केतिक मती। जस वरनत हारै सरस्वती॥
तिती सबै हरिवंश की॥
देहु कृपा करि बुद्धि प्रकाश। जस वरनौं श्रीहरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥३॥

कलियुग कलिन वेद विधि रही। धर्म कहूँ नहिं दीसत सही॥
कही भली कोउ ना करै॥
उदवस विश्व भयौ सब देश। धर्म-रहित मेदिनी-नरेश॥
म्लेच्छ सकल पहुमी बढ़े॥
सब जन करहिं आधुनिक धर्म। वेद विहित जानैं नहिं कर्म॥
मर्म भक्ति कौ क्यौं लहैं॥
बूड़त भव आवै न उसास। जस वरनौं हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥४॥

धर्म-रहित जानी सब दुनी। म्लेच्छनि भार दुखित मेदनी॥
धनी और दूजौ नहीं॥
करी कृपा मन कियौ विचार। श्रुति-पथ-विमुख दुखित संसार॥
सार वेद-विधि उद्धरी॥
सब अवतार भक्ति विस्तरी। पुनि रसरीति जगत उद्धरी॥
कर्‌यौ धर्म अपनौं प्रगट॥
प्रगटे जानि धर्म कौ नास। जस वरनौं हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥५॥

मथुरा मंडल भूमि आपुनी। जहाँ बाद प्रगटे जग धनी।
भनी अवनि वर आप मुख॥
शुभ बासर शुभ रिक्ष विचारि। माधव मास ग्यास उजियारि॥
नारिनु मंगल गाइयौ॥
तच्छिन देव-दुन्दुभी बाजिये। जै-जै शब्द सुरनि मिलि किये॥
हियैं सिराने सबनि के॥
तारा जननि जनक रिषि व्यास। जस वरनौं हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥६॥

श्रीभागौत जु शुक उच्चरी। तैसी विधि जु व्यास विस्तरी॥
करी नन्द जैसी हुती॥
घर-घर तोरन वन्दनवार। घर-घर प्रति चित्रहिं दरबार॥
पंच शब्द घर बाजिये॥
घर-घर दान प्रतिग्रह होइ। घर-घर प्रति निर्तत सब कोइ॥
घर-घर मंगल गावहीं॥
घर-घर प्रति अति होत हुलास। जस वरनौं श्रीहरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥७॥

निर्जल सजल सरोवर भये। उखटे वृक्षनि पल्लव नये॥
दये सकल सुख सबनि कौं॥
असन शयन सुख नित-नित नये। अन्न सु काल चहूँ दिशि भये॥
गये अशुभ सब विश्व के॥
मलेच्छ सकल हरि-जस विस्तरहिं। परम ललित वानी उच्चरहिं।
करहिं प्रजा पालन सबै॥
अपनी-अपनी रुचि बस वास। जस वरनौं हरिवंश विलास।
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥८॥

चलहिं सकल जन अपने धर्म। ब्राह्मण सकल करहिं षट कर्म।
भर्म सबनि कौ भाजियौ॥
छूटि गई कलियुग की रीति। नित-नित नव-नव होत समीति॥
प्रीति परस्पर अति बढ़ी॥
प्रगट होत ऐसी विधि भई। सब भव जनित आपदा गई॥
नई-नई रुचि अति बढ़ी॥
सब जन करहिं धर्म अभ्यास। जस वरनौं हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥९॥

बाल विनोद न वरनत बनहिं। अपनौं सौ उपदेशत मनहिं॥
गनहिं कवन लीला जिती॥
सब हरि-सम गुण-रूप अपार। महा पुरुष प्रगटे संसार॥
मार विमोहन तन धरयौ॥
छिन न तृपित शुभ दर्शन आस। दुलरावत बोलत मृदु हास॥
व्यास मिश्र कौ लाड़िलौ॥
मुदित सकल नहिं छाँड़त पास। जस वरनौं हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥१०॥

अब उपदेश भक्ति कौ कह्यौ। जैसी विधि जाकैं चित रह्यौ॥
लह्यौ जु मन वांछित सफल॥
सब हरि-भक्ति कही समुझाइ। जैसी-जैसी जाहि सुहाइ॥
आइ सकल चरननि भजे॥
साधन सकल कहे अविरुद्ध। वेद-पुरान सु आगम शुद्ध॥
बुधि विवेक जे जानहीं॥
समुझ्यौ सबनि सु भक्ति उजास। जस वरनौं हरिवश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥११॥

अब अवतार भेद तिन कहे। सकल उपासक तिन मन रहे॥
कहे भक्ति साधन सबै॥
मथुरा नित्य कृष्ण कौ वास। निशि-दिन श्याम न छाँड़त पास॥
तासु सकल लीला कही॥
कही सबनि की एकै रीति। श्रवन-कथन सुमिरन परतीति॥
बीति काल सब जाइयौ॥
उपज्यौ सबनि सुदृढ़ विश्वास। जस वरनौं हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥१२॥

अब जु कही सब ब्रज की रीति। जैसी सबनि नन्द-सुत प्रीति॥
कीर्ति सकल जग विस्तरी॥
बाल चरित्र प्रेम की नींव। कहत-सुनत सब सुख की सींव॥
जीवन ब्रजवासिनु सफल॥
ब्रज की रीति सु अगम अपार। विस्तरि कही सकल संसार॥
कारज सबहिनु के भये॥
ब्रज की प्रीति-रीति अनियास। जस वरनौं हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥१३॥

जिहिं विधि सकल भक्ति अनुसार। तैसी विधि सब कियौ विचार॥
सारासार विवेकि कैं॥
अब निजु धर्म आपुनौं कहत। तहाँ नित्य वृन्दावन रहत॥
बहत प्रेम - सागर जहाँ॥
साधन सकल भक्ति जा तनौ। निजु वैभव प्रगटत आपुनौ॥
भनौं एक रसना कहा॥
श्रीराधा युग चरण निवास। जस वरनौं हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥१४॥

❁ इति श्रीहित जस विलास प्रथम प्रकरण की जय जय श्रीहित हरिवंश ❁

❖ श्रीहित रस विलास प्रकरण ❖

श्रीहरिवंश नित्य वर केलि। बाढ़त सरस प्रेम-रस-बेलि॥
मेलि कण्ठ भुज खेलहीं॥
बनितन-गन मन अधिक सिरात। निरखि-निरखि लोचन न अघात॥
गात गौर-साँवल बने॥
जूथ-जूथ जुवतिनु के घने। मध्य किशोर-किशोरी बने॥
गनैं कौंन रति अति बढ़ी॥
नित-नित लीला नित-नित रास। सुनहु रसिक हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥१॥

लता भवन सुख शीतल छहाँ। श्रीहरिवंश रहत नित जहाँ॥
तहाँ न वैभव आन की॥
जब-जब होत धर्म की हानि। तब-तब तन धरि प्रगटत आनि॥
जानि और दूजौ नहीं॥
जो रसरीति सबनि तें दूरि। सो सब विश्व रही भरिपूरि॥
मूरि सजीवन कहि दई॥
सब जन मुदित करत मन हास। सुनहु रसिक हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥२॥

ललितादिक श्यामा अरु श्याम। श्रीहरिवंश प्रेम रस धाम॥
नाम प्रगट जग जानियैं॥
श्रीहरिवंश जनित जहाँ प्रेम। तहाँ कहाँ व्रत संयम नेम॥
क्षेम सकल सुख सम्पदा॥
तहाँ जाति-कुल नहीं विचार। कौंन सु उत्तम कौंन गँवार॥
सार भजन हरिवंश कौ॥
या रस मगन मिटै भव-त्रास। सुनहु रसिक हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥३॥

श्रीहरिवंश सुजस गाइयौ। सो रस सब रसिकनि पाइयौ॥
कियौ सुकृत सबकौ फल्यौ॥
या रस में विधि नहीं निषेध। तहाँ न लगन ग्रहन के वेध॥
तहाँ कुदिन-दिन कछु नहीं॥
नहिं शुभ-अशुभ मान-अपमान। नहिं अनृत-भ्रम-कपट-सयान॥
स्नान-क्रिया जप-तप नहीं॥
ज्ञान ध्यान तहँ सकल प्रयास। सुनहु रसिक हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥४॥

जहाँ श्रीहरिवंश प्रेम-उन्माद। तहाँ कहाँ स्वारथ निस्वाद॥
वाद - विवाद तहाँ नहीं॥
जे श्रीहरिवंश-नाद मोहिये। तिन फिरि बहुरि न कुल-क्रम किये॥
जिये काल बस ना परे॥
कुल बिनु कहौ कौंन सौ चाक। सहज प्रेम रस साँचे पाक॥
रंक - ईश समुझत नहीं॥
विप्र न शूद्र कौंन कुल कास। सुनहु रसिक हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥५॥

या रस-विमुख करत आचार। प्रेम बिना जु सबै कृत आर॥
भार धरत कत विप्र कौ॥
श्रीहरिवंश किशोर अहीर। अरु तिन सँग बनितन की भीर॥
तीर जमुन नित खेलहीं॥
तिनकी दई जु जूठन खात। आचारी निज कहत खिस्यात॥
बात यहै साँची सदा॥
श्रीहरिवंश कहत नित जास। सुनहु रसिक हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥६॥

निशि दिन कहत पुकारि-पुकारि। स्तुति करहु देहु कोउ गारि॥
हारि न अपनी मानिहौं॥
श्रीहरिवंश चरण नहिं तजौं। अरु तिनके भजतिन कौं भजौं॥
लजौं नहीं अति निडर ह्वै॥
श्रीहरिवंश नाम बल लहौं। अपनी मन भाई सब कहौं॥
रहौं शरण हरिवंश की॥
कहत न बनै प्रेम उज्जास। सुनहु रसिक हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥७॥

जे हरिवंश प्रेम रस झिले। क्यौं सोहैं लोगन में मिले॥
गिले काल जग देखिये॥
कर्म सकाम न कबहूँ करैं। स्वर्ग न इच्छैं नर्क न डरैं॥
धरैं धर्म हरिवंश कौ॥
श्रीहरिवंश-धर्म निर्वहैं। श्रीहरिवंश प्रेम रस लहैं॥
ते सब श्री हरिवंश के॥
सेवक तिन दासनि कौ दास। सुनहु रसिक हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥८॥

❋ इति श्रीहित रस विलास द्वितीय प्रकरण की जय जय श्रीहित हरिवंश ❋

❋

❋ श्रीहित नाम प्रताप प्रकरण ❋

त्रिपदी छन्द

श्रीहरिवंश नाम नित कहौं। नाम प्रताप नाम फल लहौं॥
नाम हमारी गति सदा॥
जे सेवैं हरिवंश सु नाम। पावैं तिन चरननि विश्राम॥
नाम रटन संतत करैं॥

नाम प्रसंग कहत उपदेश। जहँ यह धर्म धन्य सो देश॥
धन्य सु कुल जिहिं जन्म भयौ॥
धन्य सु तात धन्य सो माइ। संतत सकल सुनहु चित लाइ॥
श्रीहरिवंश प्रताप जस॥१॥

प्रथम हृदय श्रद्धा जो करै। आचारजनि जाइ अनुसरै॥
जहाँ - जहाँ हरिवंश के॥
रसिकनि की सेवा जब होइ। प्रीति सहित बूझहु सब कोइ।
कौंन धर्म हरिवंश कौ॥
कौंन सुरीति कौंन आचरन। कौंन सुकृत जिहिं पावै शरन॥
क्यौं हरिवंश कृपा करैं॥
तब सब धर्म कह्यौ समुझाइ। संतत सकल सुनहु चित लाइ॥
श्रीहरिवंश प्रताप जस॥२॥

प्रथमहिं सेवहु गुरु के चरन। जिन यह धर्म कह्यौ सब करन॥
नाम प्रताप बताइयौ॥
जो हरिवंश नाम अनुसरहु। निशि-दिन गुरु कौ सेवन करहु॥
सकल समर्पन प्राण धन॥
गुरु-सेवा तजि करहिं जे बानि। यहै अधर्म यहै सब हानि॥
कानि न रसिकनि में रहै॥
गुरु-गोविन्द न भेद कराय। संतत सकल सुनहु चित लाइ॥
श्रीहरिवंश प्रताप जस॥३॥

गुरु उपदेश सुनहु सब धर्म। श्रीहरिवंश नाम फल मर्म॥
भर्म भग्यौ वचननि सुनत॥
शुक-मुख-वचन जु श्रवन सुनावहु। तब श्रीहरिवंश सु नाम कहावहु॥
मन सुमिरन बिसरै नहीं॥

हरि-गुरु-चरन-सेवा अनुसरहु। अर्चन-वन्दन संतत करहु॥
दासन्तन करि सुख लहौ॥
सख्य समर्पन भक्ति बढ़ाइ। संतत सकल सुनहु चित लाइ॥
श्रीहरिवंश प्रताप जस॥४॥

गुरु-उपदेश चलहु इहिं चाल। ऐसी भक्ति करहु बहु काल॥
ये नव लक्षण भक्ति के॥
यह हरि-भक्ति करै जब कोइ। तब श्रीहरिवंश-नाम-रति होइ॥
यह जु बहुत हरि की कृपा॥
हरि-हरिवंश भेद नहिं करै। श्रीहरिवंश नाम उच्चरै॥
छिन-छिन प्रति बिसरै नहीं॥
प्रीति सहित यह नाम कहाइ। संतत सकल सुनहु चित लाइ॥
श्रीहरिवंश प्रताप जस॥५॥

गुरु-उपदेश चलहु इहिं रीति। श्रीहरिवंश-नाम-पद-प्रीति॥
प्रेम - मूल यह नाम है॥
प्रेमी रसिक जपत यह नाम। प्रेम मगन निज वन विश्राम॥
श्रीहरिवंश जहाँ रहैं॥
प्रेम प्रवाह परै जन सोइ। तब क्यौं लोक-वेद-सुधि होइ॥
जब श्रीहरिवंश कृपा करी॥
व्रत-संयम तब कौंन कराइ। संतत सकल सुनहु चित लाइ॥
श्रीहरिवंश प्रताप जस॥६॥

जब यह नाम हृदय आइहै। तब सब सुख सम्पत्ति पाइहै॥
श्रीहरिवंश सुजस कहै॥
अरु अपनी प्रभुता नहिं सहै। तृण तें नीच अपुनपौ कहै॥
शुभ अरु अशुभ न जानहीं॥

समुझै नहीं कछू कुल-कर्म। सूधौ चलै आपने धर्म॥
रसिकनि सौं प्रीतम कहै॥
कबहूँ काल वृथा नहिं जाइ। संतत सकल सुनहु चित लाइ॥
श्रीहरिवंश प्रताप जस॥७॥

जब श्रीहरिवंश नाम जानि है। तब सबहीं तें लघु मानि है॥
हँसि बोलै बहु मान दै॥
तरु सम सहनशीलता होइ। परम उदार कहैं सब कोइ॥
सोच न मन कबहूँ करै॥
श्रीहरिवंश सुजस मन रहै। कोमल वचन रचन मुख कहै॥
परम सुखद सबकौं सदा॥
दुखद वचन कबहूँ न कहाइ। संतत सकल सुनहु चित लाइ॥
श्रीहरिवंश प्रताप जस॥८॥

प्रगट धर्म जैसैं जानियैं। श्रीहरिवंश नाम जा हियैं॥
नाम सिद्धि पहिचानियैं॥
श्रीहरिवंश नाम सब सिद्धि। सबै रसिक विलसैं नव निद्धि॥
भुगतैं दैंहिं न जाँचहीं॥
पोषण भरण न चिन्त कराहिं। श्रीहरिवंश विभव विलसाहिं॥
श्रीवृन्दावन की माधुरी॥
गुन गावत जु रसिक सचु पाइ।संतत सकल सुनहु चित लाइ॥
श्रीहरिवंश प्रताप जस॥९॥

श्रीहरिवंश धर्म जे धरहिं। श्री हरिवंश नाम उच्चरहिं॥
ते सब श्रीहरिवंश के॥
श्रवण सुनहिं जे श्रीहरिवंश। मुख वरनत वाणी हरिवंश॥
मन सुमिरन हरिवंश कौ॥

ऐसे रसिक कृपा जो करैं। तौ हम से सेवक निस्तरैं॥
जूठनि लैं पावैं सदा॥
सेवक शरण रहै गुण गाइ। संतत सकल सुनहु चित लाइ॥
श्रीहरिवंश प्रताप जस॥१०॥

* इति श्रीहित नाम प्रताप तृतीय प्रकरण की जय जय श्रीहित हरिवंश *

❁ श्रीहित वाणी प्रताप प्रकरण ❁

(१)

समुझौ श्रीहरिवंश सु वानी। रसद मनोहर सब जग जानी॥
कोमल मधुर ललित पद श्रैंनी। रसिकन कौं जु परम सुख दैंनी॥
श्रीहरिवंश नाम उच्चारा। नितबिहार रस कह्यौ अपारा॥
श्रीवृन्दावन भूमि वखानौं। श्रीहरिवंश कहे तें जानौं॥
श्रीहरिवंश-गिरा रस सूधी। कछु नहिं कहौं आपनी बूधी॥
श्रीहरिवंश-कृपा मति पाऊँ। तब रसिकनि कौं गाइ सुनाऊँ॥

(२)

श्रीहरिवंश जु श्रीमुख भाखी। सो वन भूमि चित्त में राखी॥
हौं लघु मति नहिं लहौं प्रमाना। जानत श्रीहरिवंश सुजाना॥
नव पल्लव फल-फूल अनन्ता। सदा रहत रितु शरद-बसन्ता॥
श्रीवृन्दावन सुन्दरताई। श्रीहरिवंश नित्यप्रति गाई॥

(३)

श्रीवृन्दावन नव-नव कुंज। श्रीहरिवंश प्रेम रस पुंज॥
श्रीहरिवंश करत नित केली। छिन-छिन प्रति नव-नव रस झेली॥
कबहुँक निर्मित तरल हिंडोला। झूलत फूलत करत कलोला॥
कबहुँक नव दल सेज रचावहिं। श्रीहरिवंश सुरत रति गावहिं॥

(४)

सुरत अन्त छबि वरनि न जाई। छिन-छिन प्रति हरिवंश जु गाई॥
आजु सँभारत नाहिंन गोरी। अंग-अंग छबि कहौं सु थोरी॥
नैंन-बैंन- भूषन जिहिं भाँती। सो छबि मोपै वरनी न जाती॥
प्रेम प्रीति रसरीति बढ़ाई। श्रीहरिवंश वचन सुखदाई॥

(५)

वंश बजाइ विमोहित नारी। बोली संग सु नित्यबिहारी॥
परिरम्भन चुंबन रस केली। विहरत कुँवरि कंठ भुज मेली॥
सुन्दर रास रच्यौ वन माँहीं। जमुना-पुलिन कलपतरु-छाँहीं॥
रास रंग रति वरनी न जाई। नित-नित श्रीहरिवंश जु गाई॥

(६)

श्रीहरिवंश प्रेम रस गाना। रसिक विमोहित परम सुजाना॥
अंशनि पर भुज दियैं विलोकत। तृपित न सुन्दर मुख अवलोकत॥
इन्दु-वदन दीसत विवि ओरा। चारु सु लोचन तृषित चकोरा॥
करत पान रस-मत्त सदाई। श्रीहरिवंश प्रेम रति गाई॥

(७)

श्रीहरिवंश सु रीति सुनाऊँ। श्यामा-श्याम एक सँग गाऊँ॥
छिन इक कबहुँ न अन्तर होई। प्राण सु एक देह हैं दोई॥
राधा संग बिना नहिं श्याम। श्याम बिना नहिं राधा नाम॥
छिन-छिन प्रति आराधत रहहीं। राधा नाम श्याम तब कहहीं॥
ललितादिकनि संग सचु पावैं। श्रीहरिवंश सुरत रति गावैं॥

(८)

श्रीहरिवंश गिरा जस गायैं। श्रीहरिवंश रहत सचु पायैं॥
श्रीहरिवंश नाम परसंगा। श्रीहरिवंश-गान इक संगा॥
मन-क्रम-वचन कहौं नित टेरैं। श्रीहरिवंश प्राण धन मेरैं॥
सेवक श्रीहरिवंशहि गावै। श्रीहरिवंश नाम रति पावै॥

करषा छन्द

जयति जगदीश जस जगमगत जगतगुरु,
जगत वन्दित सु हरिवंश-वानी।
मधुर कोमल सु पद प्रीति आनन्द रस,
प्रेम विस्तरित हरिवंश-वानी॥
रसिक रस-मत्त श्रुति सुनत पीवन्त रस,
रसनि गावन्त हरिवंश-वानी।
कहत हरिवंश हरिवंश हरिवंश हित,
जपत हरिवंश हरिवंश-वानी॥९॥

कही नित केलि रस खेल वृन्दाविपिन,
कुंज तें कुंज डोलनि वखानी।
पट न परसंत निकसंत वीथिनु सघन,
प्रेम विह्वल सु नहिं देह मानी॥
मगन जित जित चलत छिन सु डगमग मिलत,
पंथ वन देत अति हेत जानी।
रसिक हित परम आनन्द अवलोकि तन,
सरस विस्तरित हरिवंश वानी॥१०॥

वंश रस नाद मोहित सकल सुन्दरी,
आनि रति मानि कुल छाँड़ि कानी।
बाहु परिरम्भ नीवी उरज परसि हँसि,
उमगि रतिपति रमित रीति जानी॥
जूथ जुवतिनु खचित रासमंडल रचित,
गान गुन निर्त आनन्द दानी।
तत्त थेई-थेई करत गतिव नौतन धरत,
रास रस रचित हरिवंश वानी॥११॥

रास रस रचित वाणी सु प्रगटित जगत,
शुद्ध अविरुद्ध परसिद्ध जानी।
श्याम-श्यामा प्रगट प्रगट अक्षर निकट,
प्रगट रस श्रवत अति मधुर वानी॥
सो जु वानी रसिक नित्य निशि-दिन रटत,
कहत अरु सुनत रसरीति जानी।
ताहि तजि और गाऊँ न कबहूँ कछू,
प्राण रमि रही हरिवंश वानी॥१२॥

भाग-अनभाग जानत जु नहिं आपुनौं,
कौंन धौं लाभ अरु कौंन हानी।
प्रगट निधि छाँड़ि कत फिरत रूँका करत,
भरम भटकत सु नहिं भूलि जानी॥
प्रीति बिनु रीति रूखी जु लागत सकल,
जुगति करि होत कत कवित मानी।
रसिक जो सद्य चाहत जु रसरीति फल,
तौ कहहु अरु सुनहु हरिवंश-वानी॥१३॥

यहै नित केलि येई जु नाइक निपुन,
यहै वन भूमि नित-नित वखानी।
बहुत रचना करत राग-रागिनि धरत,
तान बंधान सब ठानि आनी॥
ज्यौं मूँद नहिं मिलत टकसार तें बाहिरी,
लाख में गैर मुहरी जु जानी।
यौं जु रसरीति वरनत न ठाँईं मिलत,
जो न उच्चरत हरिवंश-वानी॥१४॥

रसिक बिनु कहैं सबही जु मानत बुरौ,
रसिकई कहौ कैसैं जु जानी।
आपुनी-आपुनी ठौर जेई जहाँ,
आपुनी बुद्धि कैं होत मानी॥
निपट करि रसिक जो होहु तैसी कहौ,
अब जु यह सुनहु मेरी कहानी।
जौरु तुम रसिक रसरीति के चाड़िले,
तौरु मन देहु हरिवंश वानी॥१५॥

वेद विद्या पढ़त कर्म-धर्मनि करत,
जल्प तन कल्प की अवधि आनी।
चारु गति छाँड़ि संसार भटकत भ्रमत,
आस की पाशि नहिं तोरि जानी॥
सकल स्वारथ करत रहत जन्मत-मरत,
दुःख अरु सुःख के होत मानी।
छाँड़ि जंजार कैसैं न निश्चय धरत,
एक किन रमत हरिवंश-वानी॥१६॥

वृथा बलगन करत, द्यौस खोवत सकल,
सोवतन रात नहिं जात जानी।
ऐसैंई भाँति समुझ्यौ न कबहूँ कछू,
कौंन सुख-दुःख को लाभ-हानी॥
तब सुःख हरिवंश गुन नाम रसना रटत,
और बहु वचन अति दुःखदानी।
हानि हरिवंश कैं नाम अन्तर परै,
लाभ हरिवंश उच्चरत वानी॥१७॥

नाम वानी निकट श्याम-श्यामा प्रगट,
रहत निशि-दिन परम प्रीति जानी।
नाम-वानी सुनत श्याम-श्यामा सु बस,
रसद माधुर्य अति प्रेम दानी॥
नाम-वानी जहाँ श्याम-श्यामा तहाँ,
सुनत-गावंत मो मन जु मानी।
बलित शुभ नाम बलि विशद कीरति जगत,
हौं जु बलि जाउँ हरिवंश-वानी॥१८॥

(१९)

बलि-बलि श्रीहरिवंश नाम, बलि बलित विमल जस।
बलि-बलि श्रीहरिवंश, कर्म व्रत कृत सु नाम बस॥
बलि-बलि श्रीहरिवंश, वरन धर्मनि गति जानत।
बलि-बलि श्रीहरिवंश नाम, कलि प्रगट प्रमानत॥
हरिवंश नाम सु प्रताप बलि, बलित जगत कीरति विशद।
हरिवंश विमल वानी सु बलि, मृदु कमनीय सु मधुर पद॥

* इति श्रीहित वाणी-प्रताप चतुर्थ प्रकरण की जय जय श्रीहित हरिवंश *

❁ श्रीहित इष्टाराधन प्रकरण ❁

प्रथम प्रणम्य सुरम्य मति, मन-बुधि-चित्त प्रसंश।
चरन-शरन सेवक सदा, सु जय जय श्रीहरिवंश॥
श्रीहरिवंश विपुल गुण मिष्टं। श्रीहरिवंश उपासक इष्टं॥
श्रीहरिवंश कृपा मति पाऊँ। श्रीहरिवंश विमल गुण गाऊँ॥
गाऊँ हरिवंश नाम जस निर्मल, श्रीहरिवंश रमित प्रानं।
कारज हरिवंश प्रताप सु उद्दित, कारन श्रीहरिवंश भनं॥

विद्या हरिवंश मंत्र चतुरक्षर, जपत सिद्ध भव उद्धरनं।
जै जै हरिवंश जगत मंगल पर, श्रीहरिवंश-चरन-शरनं॥१॥

हरि रिति अक्षर बीज रिषि, वंशी शक्ति सु अंश।
नख-शिख सुन्दर ध्यान धरि, जै जै श्रीहरिवंश॥
श्रीहरिवंश सु सुन्दर ध्यानं। श्रीहरिवंश विशद विज्ञानं॥
श्रीहरिवंश नाम - गुन-श्रूपं। श्रीहरिवंश प्रेम रस रूपं॥
रसमय हरिवंश परम परमाक्षर, श्रीहरिवंश कृपा-सदनं।
आत्मा हरिवंश प्रगट परमानँद, श्रीहरिवंश प्रमान मनं॥
जीवन हरिवंश विपुल सुख सम्पति, श्रीहरिवंश वलित वरनं।
जै जै हरिवंश जगत मंगल पर, श्रीहरिवंश-चरन-शरनं॥२॥

शरन निरापक पद रमित, सकल अशुभ-शुभ नंश।
देत सहज निश्चल भगति, जै जै श्रीहरिवंश॥
श्रीहरिवंश मुदित मन लोभं। श्रीहरिवंश वचन वर शोभं॥
श्रीहरिवंश काय कृत कारं। श्रीहरिवंश त्रिशुद्ध विचारं॥
पूजा हरिवंश नाम परमारथ, श्रीहरिवंश विवेक परं।
धीरज हरिवंश विरद बल वीरज, श्रीहरिवंश अभद्र हरं॥
तृष्णा हरिवंश सुजस रस लम्पट, श्रीहरिवंश कर्म करनं।
जै जै हरिवंश जगत मंगल पर, श्रीहरिवंश-चरन-शरनं॥३॥

श्रीहरिवंश सु गोत कुल, देव जाति हरिवंश।
श्रीहरिवंश स्वरूप हित, ऋद्धि-सिद्धि हरिवंश॥
श्रीहरिवंश विदित विधि वेदं। श्रीहरिवंश जु तत्व अभेदं॥
श्रीहरिवंश प्रकाशित जोगं। श्रीहरिवंश सुकृत सुख भोगं॥
प्रज्ञा हरिवंश प्रतीति प्रमानत, प्रीतम श्रीहरिवंश प्रियं।
गाथा हरिवंश गीत गुन गोचर गुपत गुनित हरिवंश गियं॥

सेवक हरिवंश सार संचित सब, श्रीहरिवंश धर्म धरनं।
जै जै हरिवंश जगत मंगल पर, श्रीहरिवंश-चरन-शरनं॥४॥

जै जै श्रीहरिवंश-चन्द्र, द्विजवर कुल मण्डन।
जै जै श्रीहरिवंश-चन्द्र, कलि-तम भव खण्डन॥
जै जै श्रीहरिवंश-चन्द्र, अकलंक प्रकाशित।
जै जै श्रीहरिवंश-चन्द्र, सब जग आभासित॥
श्रीहरिवंश-चन्द्र अमृत वरषि, सकल जन्तु तापनि हरनं।
सेवक समीप संतत रहै सु, श्रीहरिवंश चरन शरनं॥५॥

* इति श्रीहित इष्टाराधन पंचम प्रकरण की जय जय श्रीहित हरिवंश *

*

❁ श्रीहित धर्मी-कृत प्रकरण ❁

पहिलैं हरिवंश सु नाम कहौं। हरिवंश सु धर्मिनु संग लहौं॥
हरिवंश सु नाम सदा तिनकैं। सुख सम्पति दम्पति जू जिनकैं॥

हरिवंश सु नाम कहौं नित कैं। मिल ही कहौं कृत्त सु धर्मिनु कैं॥
हरिवंश उपासन है तिनकैं। सुख सम्पति दम्पति जू जिनकैं॥

हरिवंश-गिरा रसरीति कहैं। सुकृतीजन संगति नित्य रहैं॥
कछु धर्म विरुद्ध नहीं तिनकैं। सुख सम्पति दम्पति जू जिनकैं॥

हरिवंश प्रसंशित नित्य रहैं। रसरीति विवर्धित कृत्य कहैं॥
जु कछू कुल कर्म नहीं तिनकैं। सुख सम्पति दम्पति जू जिनकैं॥

हरिवंश सु नाम जु नित्य रटैं। छिन याम समान न नैंकु घटैं॥
विधि और निषेध नहीं तिनकैं। सुख सम्पति दम्पति जू जिनकैं॥

हरिवंश सु धर्म जु नित्य करैं। हरिवंश कही सु नहीं बिसरैं॥
हरिवंश सदा निधि हैं तिनकैं। सुख सम्पति दम्पति जू जिनकैं॥

हरिवंश प्रतापहिं जानत हैं । हरिवंश प्रबोध प्रमानत हैं॥
हरिवंश सु सर्वस हैं तिनकैं । सुख सम्पति दम्पति जू जिनकैं॥

हरिवंश विचार परे जु रहैं । हरिवंश धरम्म धुरा निवहैं॥
हरिवंश निवाहक हैं तिनकैं । सुख सम्पति दम्पति जू जिनकैं॥

हरिवंश रसायन पीवतु हैं । हरिवंश कहैं सुख जीवतु हैं॥
हरिवंश पतिव्रत हैं तिनकैं । सुख सम्पति दम्पति जू जिनकैं॥

हरिवंश-गिरा - रसरीति भनैं । हरिवंश कहैं हरिवंश सुनैं॥
हरिवंश हृदय व्रत हैं तिनकैं । सुख सम्पति दम्पति जू जिनकैं॥

हरिवंश-कृपा हरिवंश कहैं । हरिवंश कहैं हरिवंश लहैं॥
हरिवंश सु लाभ सदा तिनकैं । सुख सम्पति दम्पति जू जिनकैं॥

हरिवंश पराइन प्रेम भरे । हरिवंश सु मंत्र जपैं सुधरे॥
हरिवंश सु ध्यान सदा तिनकैं । सुख सम्पति दम्पति जू जिनकैं॥

नित श्रीहरिवंश सु नाम कहैं । नित राधिका-श्याम प्रसन्न रहैं॥
नित साधन और नहीं तिनकैं । सुख सम्पति दम्पति जू जिनकैं॥

जब राधिका-श्याम प्रसन्न भये । तब नित्य समीप सु खैंचि लये॥
हरिवंश समीप सदा तिनकैं । सुख सम्पति दम्पति जू जिनकैं॥

नित-नित श्रीहरिवंश नाम, छिन-छिन जु रटत नर।
नित-नित रहत प्रसन्न, जहाँ दम्पति किशोर वर॥
जहँ हरि तहँ हरिवंश, जहाँ हरिवंश तहाँ हरि।
एक शब्द हरिवंश नाम, राख्यौ समीप करि॥
हरिवंश नाम सु प्रसन्न हरि, हरि प्रसन्न हरिवंश-रति।
हरिवंश चरन सेवक जिते, सुनहु रसिक रसरीति गति॥

* इति श्रीहित धर्मी-कृत्त षष्ठम प्रकरण की जय जय श्रीहित हरिवंश *

❁ श्रीहित रसरीति प्रकरण ❁

व्यासनन्दन जगत आधार,
जगमगत जग जस सब जग, वन्दनीय जग भय विहंडन।
जग-शोभा जग-सम्पदा, जग-जीवन सब जग-मंडन॥
जग-मंगल जग-उद्धरन, जग-निधि जगत-प्रसंश।
चरन-शरन सेवक सदा, सु जै जै श्रीहरिवंश॥१॥

जयति जमुना विमल वर वारि,
शीतल तरल तरंगिनी, रत्न वद्ध विवि तट विराजत।
प्रफुलित विविध सरोजगन. चक्रवादि कुल हंस राजत॥
कूल विशद वन द्रुम सघन, लता भवन अति रम्य।
नित्य केलि हरिवंश हित, ब्रह्मादिकनि अगम्य॥२॥

सुधर सुन्दर सुमति सर्वज्ञ,
संतत सहज सदा सदन, सघन कुंज सुख-पुंज वरषत।
सौरभ सरस सुमन चैंन, सजित सैंन सचु रंग हरषत॥
केलि विशद आनँद रसद, बेलि बढ़ति नित याम।
ठेलि निगम-मग पग सुभग, खेलि कुँवर वर वाम॥३॥

रसिक रवनी रसद रस-रासि,
रस-सींवा रस-सागरी, रस निकुंज सुख-पुंज वरषत।
रस-निधि सुविधि रसज्ञ रस, रेख रीति रस प्रीति हरषत॥
रस मूरति सूरति सरस, रस विलसनि रस रंग।
रस प्रवाह सरिता सरस, रति रस लहर तरंग॥४॥

श्यामसुन्दर उरसि वनमाल,
उरगभोग भुज दण्ड वर, कम्बु कंठ मणिगन विराजत।
कुंचित कच मुख ताम रस, मधु लम्पट जनु मधुप राजत॥

सीस मुकट कुंडल श्रवन, मुरली अधर त्रिभंग।
कनक कपिस पट शोभियत जनु घन-दामिनि संग॥५॥

सुभग सुन्दरी सहज सिंगार,
सहज शोभा सर्वांग प्रति, सहज रूप वृषभानुनंदिनी।
सहजानन्द कदम्बिनी, सहज विपिन उर उदित चन्दिनी॥
सहज केलि नित-नित नवल, सहज रंग सुख चैंन।
सहज माधुरी अंग प्रति, सु मोपै कहत बनैं न॥६॥

विपिन निर्तत रसिक रस-रासि,
दम्पति अति आनन्द बस, प्रेम मत्त निश्शंक क्रीड़त।
चंचल कुण्डल कर चरन, नैंन लोल रति-रंग ब्रीड़त॥
झटकत पट चुटकिनु चटक, लटकत लट मृदु हास।
पटकत पद उघटत शबद, मटकत भृकुटि विलास॥७॥

नवल नागरी नवल युवराज,
नव-नव वन घन क्रीड़ंत, नव निकुंज विलसंत सर्वस।
नव-नव रति नित-नित बढ़त, नयौ नेह नव रंग नयौ रस॥
नव विलास कल हास नव, सरस मधुर मृदु बैंन।
नव किशोर हरिवंश हित, सु नवल-नवल सुख चैंन॥८॥

नवल-नवल सुख चैंन, ऐन आपुने आपु बस।
निगम-लोक-मर्याद भंजि, क्रीड़ंत रंग रस॥
सुरत प्रसंग निशंक करत, जोइ-जोइ भावत मन।
ललित अंग चलि भंगि भाइ, लज्जित सु कोक-गन॥
अद्‌भुत बिहार हरिवंश हित, निरखि दासि सेवक जियत।
विस्तरत-सुनत-गावत रसिक, सु नित-नित लीला रस पियत॥९॥

॥ इति श्रीहित रसरीति सप्तम प्रकरण की जय जय श्रीहित हरिवंश ॥

❁ श्रीहित अनन्य टेक प्रकरण ❁

(१)

कर्म-धर्म कोउ करहु वेद-विधि, कोउ बहु विधि देवतनि उपासी।
कोउ तीरथ-तप-ज्ञान-ध्यान व्रत, अरु कोउ निर्गुण ब्रह्म उपासी॥
कोउ यम-नेम करत अपनी रुचि, कोउ अवतार-कदम्ब उपासी।
मन-क्रम-वचन त्रिशुद्ध सकल मत, हम श्रीहित हरिवंश उपासी॥

(२)

जाति पाँति कुल कर्म-धर्म-व्रत, संसृति हेतु अविद्या नासी।
सेवक रीति प्रतीति प्रीति हित, विधि निषेध श्रृंखला विनासी॥
अब जोई कहौ करैं हम सोई, आयसु लियैं चलैं निजु दासी।
मन-क्रम-वचन त्रिशुद्ध सकल मत, हम श्रीहित हरिवंश उपासी॥

(३)

जो हरिवंश कौ नाम सुनावै, तन-मन-प्राण तासु बलिहारी।
जो हरिवंश-उपासक सेवै, सदा सेउँ ताकैं चरन विचारी॥
जो हरिवंश-गिरा-जस गावै, सर्वसु दैंउँ तासु पर वारी।
जो हरिवंश कौ धर्म सिखावै, सोई तौ मेरैं प्रभु तें प्रभु भारी॥

(४)

श्रीहरिवंश सु नाद विमोहीं, सुनि धुनि नित्य तहाँ मन दैहौं।
श्रीहरिवंश सुनन्त चलीं सँग, हौं तिन संग नित्य प्रति जैहौं॥
श्रीहरिवंश-विलास-रास रस, श्रीहरिवंश संग अनुभैहौं।
जो हरि-नाम जगत्र शिरोमणि, वंश बिना कबहूँ नहिं लैहौं॥

(५)

प्रेमी अनन्य भजन्न न होइ जु, अन्तरयामी भजै मन में।
जो भजि देख्यौ यशोदा कौ नंदन, तौ विश्व दिखाई सबै तन में॥
श्रीहरिवंश सुनाद विमोहीं, ते शुद्ध समीप मिलीं छिन में।
अब यामें मिलौनीं मिलै न कछू, जब खेलत रास सदा वन में॥

(६)

जो बहु मान करै कोउ मेरौ, कियैं बहु मानत नाहिं बड़ाई।
जो अपमान करै कोउ कैहूँ, कियैं अपमान नहीं लघुताई॥
श्रीहरिवंश-गिरा रस-सागर, माँझ मगन्न सबै निधि पाई।
जो हरिवंश तजौं भजौं औरहिं, तौ मोहि श्रीहरिवंश दुहाई॥

(७)

कही वन-केलि निकुंज-निकुंजनि, नव दल नूतन सेज रचाई।
नाथ विरंमि-विरंमि कही तब, सो रति तैसी धौं कैसैं भुलाई॥
सत्वर उठे महा मधु पीवत, माधुरी वानी मेरैं मन भाई।
जो हरिवंश तजौं भजौं औरहिं, तौ मोहि श्रीहरिवंश दुहाई॥

(८)

भुज अंशनि दीने विलोकि रहे, मुख-चन्द उभय मधु पान कराई।
आपु विलोकि हृदय कियौ मान, चिवुक्क सुचारु प्रलोइ मनाई॥
श्रीहरिवंश बिना यह हेत, को जानैं कहा को कहै समुझाई।
जो हरिवंश तजौं भजौं औरहिं, तौ मोहि श्रीहरिवंश दुहाई॥

(९)

श्रीहरिवंश सु नाद सु रीति, सु गान मिलैं वन-माधुरी गाई।
श्रीहरिवंश वचन्न रचन्न सु, नित्य किशोर-किशोरी लड़ाई॥
श्रीहरिवंश-गिरा-रसरीति सु, चित्त प्रतीति न आन सुहाई।
जो हरिवंश तजौं भजौं औरहिं, तौ मोहि श्रीहरिवंश दुहाई॥

(१०)

श्रीहरिवंश कौ नाम सु सर्वसु, जानि सु राख्यौ मैं चित्त समाई।
श्रीहरिवंश के नाम प्रताप कौ, लाभ लह्यौ सु कह्यौ नहिं जाई॥
श्रीहरिवंश कृपा तें त्रिशुद्ध कै, साँची यहै जु मेरैं मन भाई।
जो हरिवंश तजौं भजौं औरहिं, तौ मोहि श्रीहरिवंश दुहाई॥

(११)

देखे जु मैं अवतार सबै भजि, तहाँ-तहाँ मन तैसौ न जाई।
गोकुलनाथ महा ब्रज वैभव, लीला अनेक न चित्त खटाई॥
एकहि रीति प्रतीति बँध्यौ मन, मोहि सबै हरिवंश बजाई।
जो हरिवंश तजौं भजौं औरहिं, तौ मोहि श्रीहरिवंश दुहाई॥

(१२)

नाम अरद्ध हरै अघ-पुंज, जगत्त करै हरि नाम बड़ाई।
सो हरिवंश समेत सम्पूरन, प्रेमी अनन्यनि कौं सुखदाई॥
श्रीहरिवंश कहंत-सुनंत, छिनै-छिन काल वृथा नहिं जाई।
जो हरिवंश तजौं भजौं औरहिं, तौ मोहि श्रीहरिवंश दुहाई॥

छप्पै

श्रीहरिवंश सु प्रान, सु मन हरिवंश गनिज्जै।
श्रीहरिवंश सु चित्त, मित्त हरिवंश भनिज्जै॥
श्रीहरिवंश सु बुद्धि, वरन हरिवंश नाम जस।
श्रीहरिवंश प्रकाश, वचन हरिवंश गिरा रस॥
हरिवंश नाम बिसरै न छिन, श्रीहरिवंश सहाय भल।
हरिवंश चरन सेवक सदा, सु शपथ करी हरिवंश बल॥१३॥

* इति श्रीहित अनन्य टेक अष्टम प्रकरण की जय जय श्रीहित हरिवंश *

*

❀ श्रीहित कृपा-अकृपा प्रकरण ❀

अकृपा-सोरठा-

सब जग देख्यौ चाहि, काहि कहौं हरि-भक्ति बिनु।
प्रीति कहूँ नहिं आहि, श्रीहरिवंश-कृपा बिना॥१॥
गुप्त प्रीति कौ भंग, संग प्रचुर अति देखियत।
नाहिंन उपजत रंग, श्रीहरिवंश-कृपा बिना॥२॥

मुख वरनत रसरीति, प्रीति चित्त नहिं आवई।
चाहत सब जग कीर्ति, श्रीहरिवंश-कृपा बिना॥३॥
गावत गीत रसाल, भाल तिलक शोभित घना।
बिनु प्रीतिहिं बेहाल, श्रीहरिवंश-कृपा बिना॥४॥
नाचत अतिहिं रसाल, ताल न शोभित प्रीति बिनु।
जनु बीधे जंजाल, श्रीहरिवंश-कृपा बिना॥५॥
मानत अपनौं भाग, राग करत अनुराग बिनु।
दीसत सकल अभाग, श्रीहरिवंश-कृपा बिना॥६॥
पढ़त जु वेद-पुरान, दान न शोभित प्रीति बिनु।
बीधे अति अभिमान, श्रीहरिवंश-कृपा बिना॥७॥
दर्शन भक्त अनूप, रूप न शोभित प्रीति बिनु।
भरम भटक्कत भूप, श्रीहरिवंश-कृपा बिना॥८॥
सुन्दर परम प्रवीन, लीन न शोभित प्रीति बिनु।
ते सब दीसत दीन, श्रीहरिवंश-कृपा बिना॥९॥
गुन मानी संसार, और सकल गुन प्रीति बिनु।
बहुत धरत सिर भार, श्रीहरिवंश-कृपा बिना॥१०॥

कृपा सोरठा–

मुख वरनत हरिवंश, चित्त नाम हरिवंश-रति।
मन सुमिरन हरिवंश, यह जु कृपा हरिवंश की॥१॥
सब जीवन सौं प्रीति, रीति निवाहत आपुनी।
श्रवण-कथन परतीति, यह जु कृपा हरिवंश की॥२॥
शत्रु मित्र सम जानि, मानि मान अपमान सम।
दुख-सुख लाभ न हानि, यह जु कृपा हरिवंश की॥३॥
नित इक धर्मिनु संग, रंग बढ़त नित-नित सरस।
नित-नित प्रेम अभंग, यह जु कृपा हरिवंश की॥४॥

निरखत नित्यबिहार, पुलकित तन रोमावली।
आनँद नैंन सुढार, यह जु कृपा हरिवंश की॥५॥
छिन-छिन रुदन करन्त, छिन गावत आनंद भरि।
छिन-छिन हहर हसन्त, यह जु कृपा हरिवंश की॥६॥
छिन-छिन बिहरत संग, छिन-छिन निरखत प्रेम भरि।
छिन जस कहत अभंग, यह जु कृपा हरिवंश की॥७॥
निरखत नित्य किशोर, नित्य-नित्य नव-नव सुरति।
नित निरखत छबि भोर, यह जु कृपा हरिवंश की॥८॥
तृपित न मानत नैंन, कुंज रन्ध्र अवलोकि तन।
यह सुख कहत बनैं न, यह जु कृपा हरिवंश की॥९॥
कहा कहौं बड़भाग, नित-नित रति हरिवंश हित।
नित वर्द्धित अनुराग, यह जु कृपा हरिवंश की॥१०॥

छप्पै

नित वर्द्धित अनुराग, भाग अपनौं करि मानत।
नित्य-नित्य नव केलि, निरखि नैंननि सचु मानत॥
नित-नित श्रीहरिवंश नाम, नव-नव रति मानत।
नित-नित श्रीहरिवंश कहत, सोइ-सोइ सिर मानत॥
आपुनौं भाग आपुन प्रगट, कहत जु श्रीहरिवंश-बल।
हरिवंश भरोसे भये निडर, सु नित गरजत हरिवंश-बल॥११॥

॥ इति श्रीहित कृपा-अकृपा नवम प्रकरण की जय जय श्रीहित हरिवंश ॥

❁ श्रीहित भक्त भजन प्रकरण ❁

कुण्डलियाँ

श्रीहरिवंश सु धर्म दृढ़, अरु समुझत निजु रीति।
तिनकौ हौं सेवक सदा, मन-क्रम-वचन प्रतीति॥

मन-क्रम-वचन प्रतीति, प्रीति दिन चरन पखारौं।
नित प्रति जूठन खाउँ, वरन भेदहि न विचारौं॥
तिनकी संगति रहत, जाति-कुल-मद सब नंशहि।
संतत सेवक सदा, भजत जे श्रीहरिवंशहि॥१॥

सब अनन्य साँचे सुविधि, सबकौ हौं निजु दास।
सुमिरन नाम पवित्र अति, दरस परस अघ नास॥
दरस परस अघ नास, वास निज संग करौं दिन।
तिन मुख हरि-जस सुनत, श्रवण मानौं न तृपित छिन॥
कलि अभद्र वरनत सहस, कलि कामादिक द्वंद तब।
सेवक शरण सदा रहै, सुविधि साँचे अनन्य सब॥२॥

श्रीराधाबल्लभ भजत भजि, भली-भली सब होय।
रसिक अनन्य सजाति भजि, भली-भली सब होय॥
भली-भली सब होइ, जबहि हरिवंश-चरन-रति।
भली-भली तब होइ, रचित रसरीति सदा मति॥
भली-भली तब होइ, भक्ति गुरु-रीति अगाधा।
भली-भली तब होइ, भजत भजि श्रीहरि राधा॥३॥

श्रीराधाबल्लभ भजत भजि, भली-भली सब होइ।
अशुभ अनर्भल संग जन, विमुख तजहु सब कोइ॥
विमुख तजहु सब कोइ, झूँठ बोलत सचु मानत।
दोष करत निर्शंक, रंक करि संतनि जानत॥
अभिमानी गर्विष्ट, लोभ-मद-मत्त अगाधा।
दुष्ट परिहरौ दूर, भजत भजि श्रीहरि-राधा॥४॥

श्रीराधाबल्लभ भजत भजि, भली-भली सब होइ।
जिते विनायक शुभ-अशुभ, विघ्न करैं नहिं कोइ॥
विघ्न करैं नहिं कोइ, डरैं कलि काल कष्ट भय।
हरैं सकल संताप, हरषि हरि नाम जपत जय॥
श्रीवृन्दावन नित्य केलि, नव-नवल अगाधा।
हित हरिवंश किशोर, भजत भजि श्रीहरि-राधा॥५॥

श्रीराधाबल्लभ भजत भजि, भली-भली सब होइ।
त्रिविध ताप नासहिं सकल, सब सुख सम्पति होइ॥
सब सुख सम्पति होइ, होइ हरिवंश-चरन-रति।
होइ विषय-विष नास, होइ वृन्दावन बसि गति॥
होइ सुदृढ़ सत्संग, होइ रसरीति अगाधा।
होइ सुजस जग प्रगट, होइ पद प्रीति सु राधा॥६॥

श्रीराधाबल्लभ भजत भजि, भली-भली सब होइ।
भीर मिटै भट यमन की, भय-भंजन हरि सोइ॥
भय-भंजन हरि सोइ, भरम भूल्यौ भटकत कति।
भगवत-भक्ति विचार, वेद भागवत प्रीति रति॥
भक्त-चरण धरि भाव तरत, भव-सिन्धु अगाधा।
हित हरिवंश प्रसंश, भजत भजि श्रीहरि-राधा॥७॥

श्रीराधाबल्लभ भजत भजि, भली-भली सब होइ।
अन्य देव-सेवी सकल, चलत पुँजी सी खोंइ॥
चलत पुँजी सी खोइ, रोइ झखि द्यौस गँवावहि।
सोइ छपत सब रैंन, जोइ कपि सम जु नँचावहि॥

भोइ विषम विष विषय, कोइ सतगुरु नहिं लाधा।
धोइ सकल कलि-कलुष, दोइ भजि श्रीहरि-राधा॥८॥

श्रीराधाबल्लभलाल बिनु, जीवन जनम अकत्थ।
बाधा सब कुल-कर्म-कृत, तुच्छ न लागै हत्थ॥
तुच्छ न लागै हत्थ, सत्थ समरथ न वियौ तब।
माथ धुनत हरि-विमुख, संग यम-पंथ चलत जब॥
गाथ विमल गुन गान, कत्थ जस श्रवन अगाधा।
नाथ अनाथनि हित समर्थ, मोंहन-श्रीराधा॥९॥

कर्मठ कठिन सशल्य नित, सोचत सीस धुनंत।
श्रीहरिवंश जु उद्धरी, सोइ रसरीति सुनंत॥
सोइ रसरीति सुनंत, अन्त अनसहन करत सब।
जब-जब जियनि विचारि, सार मानत मन-मन तब॥
छिन-छिन लोलुप चित्त, समुझि छाँड़त तातें सठ।
करत न सन्त समाज, जिते अभिमानी कर्मठ॥१०॥

हित हरिवंश प्रसंशि मन, नित सेवन विश्राम।
चित निषेध विधि सुधि नहीं, वितु संचित निधि नाम॥
वितु संचित निधि नाम, काम सुमिरन दासन्तन।
याम घटी न विलम्ब, वाम कृत करत निकट जन॥
ग्राम पंथ आरण्य, दाम दृढ़ प्रेम ग्रथित नित।
ता मति रति सुख-रासि, वाम दृश नव किशोर हित॥११॥

श्रीराधा-आनन-कमल, हरि-अलि नित सेवंत।
नव-नव रति हरिवंश हित, वृन्दाविपिन बसंत॥

वृन्दाविपिन बसंत, परस्पर बाहुँ दंड धरि।
चलत चरन गति मत्त, करिनि-गजराज गर्व भरि॥
कुंज भवन नित केलि करत, नव-नवल अगाधा।
नाना काम प्रसंग करत, मिलि हरि-श्रीराधा॥१२॥

मुख विहँसत हरिवंश हित, रुख रस-रासि प्रवीन।
सुख-सागर नागर गुरू, पुहुप - सैंन आसीन॥
पुहुप - सैंन आसीन, कीन निजु प्रेम केलि बस।
पीन उरज वर परसि, भीन नव सुरत रंग रस॥
खीन निरखि मद मदन दीन, पावत जु विलखि दुख।
मीनकेतु निर्जित सु लीन, प्रिय निरखि विहँसि मुख॥१३॥

रस-सागर हरिवंश हित, लसत सरित वर तीर।
जस जग विशद सु विस्तरित, बसत जु कुंज कुटीर॥
बसत जु कुंज कुटीर, भीर नव रँग भामिनि भर।
चीर नील गौरांग सरस घन तन पीताम्बर॥
धीर बहत दक्षिन समीर, कल केलि करत अस।
नीरज सैंन सु रचित वीर, वर सुरत रंग रस॥१४॥

पिय विचित्र वन हरषि मन, जिय जस वैंनु कुनंत।
तिय तरुनी सुनि तुष्ट धुनि, कियौ तहँ गवन तुरंत॥
कियौ तहँ गवन तुरंत, कंत मिलि विलसत सर्वस।
तन्त रासमण्डल जुरन्त, रस निर्त रंग रस॥
संतत सुर दुन्दुभि बजंत, वरषंत सुमन लिय।
अंत केलि जल जनुकि, मत्त इभराट-करिनि प्रिय॥१५॥

हरि बिहरत वन जुगल जनु, तड़ित सु वपु घन संग।
करि किशलय दल सैंन भल, भरि अनुराग अभंग॥
भरि अनुराग अभंग, रंग अपने सचु पावत।
अंग-अंग सजि सुभट, जंग मनसिजहिं लजावत॥
पंगु दृष्टि ललितादि, तंक निरखत रंध्रनि करि।
मंग आदि रचि शिथिल, सजित उच्छंग धरत हरि॥१६॥

श्याम सुभग तन विपिन घन, धाम विचित्र बनाइ।
ता मँहिं संगम जुगल जन, काम-केलि सचु पाइ॥
काम-केलि सचु पाइ, दाइ छल प्रियहिं रिझावत।
धाइ धरत उर अंक, भाइ गन कोक लजावत॥
चाइ चवग्गुन चतुर राइ, रस रति संग्रामहिं।
छाइ सुजस जग प्रगट, गाइ गुन जीवत श्यामहिं॥१७॥

सलिता-तट सुर-द्रुम निकट, अलि ता सुमन सुवास।
ललितादिक रसननि विवस, चलि ता कुंज निवास॥
चलि ता कुंज निवास, आस तब हित मग परषत।
रासस्थल उत्तम विलास, सचि मिलि मन हरषत॥
तासु वचन सुनि चित हुलास, विरहज दुख गलिता।
दासन्तनि कुल जुवति, मास माधव सुख-सलिता॥१८॥

परषत पुलिन सुलिन गिरा, करषत चित सुर-घोर।
हरषत हित नित नवल रस, वरषत जुगल किशोर॥
वरषत जुगल किशोर, जोर नव कुंज सुरत रन।
मोर चन्द्र चय चलत, डोर कच शिथिल सुभग तन॥

चोर चित्त ललितादि, कोर रंध्रनि निजु निरखत।
थोर प्रीति अन्तर न भोर, दम्पति-छवि परखत॥१९॥

रितु बसन्त वन फल सुमन, चित प्रसन्न नव कुंज।
हित दम्पति रति कुशल मति, वितु संचित सुख-पुंज॥
वितु संचित सुख-पुंज, गुंज मधुकर सु नाद धुनि।
रुंज-मृदंग-उपंग धुंज, डफ झंझ ताल सुनि॥
मंजु जुवति रस गान, लुंज इव खग तहँ विथकित।
भुंजत रास-विलास कुंज नव, सचि बसन्त रितु॥२०॥

कहत-कहत न कही परै, रहत जु मनहिं विचारि।
सहत-सहत बाढ़ै भगति, गृह तन गुरु हित गारि॥
गृह तन गुरु हित गारि, हारि अपनी करि मानत।
चार वेद स्मृति सु चार, क्रम कर्म न जानत॥
डारि अविद्या करि विचार चित, हित हरिवंशहि।
नारि रसिक ह्रद वन विहार, महिमा न परै कहि॥२१॥

सेवक श्रीहरिवंश के, जग भ्राजत गुन गाइ।
निशि-दिन श्रीहरिवंश हित, हरषि चरन चित लाइ॥
हरषि चरन चित लाइ, जपत हरिवंश गिरा-जस।
मनसि-वचसि चित लाइ, जपत हरिवंश नाम-जस॥
श्रीहरिवंश प्रताप नाम-नौका निजु खेवक।
भव-सागर सुख तरत, निकट हरिवंश जु सेवक॥२२॥

* इति श्रीहित भक्त भजन नाम दसम प्रकरण की जय जय श्रीहित हरिवंश *

❁ श्रीहित ध्यान प्रकरण ❁

(१)

स जयति हरिवंश चन्द्र नामोच्चार वर्द्धित सदा सु बुद्धि।
रसिक अनन्य प्रधान सतु साधु मण्डली मंडनो जयति॥
जै जै श्रीहरिवंश हित, प्रथम प्रणउँ सिर नाइ।
परम रसद निर्विघ्न ह्वै, जैसैं कवित सिराइ॥
सु कवित्त सु छन्द गनिज्जै, समय प्रबन्ध वन।
सु कवि विचित्र भनिज्जै, हरि जस लीन मन॥
श्रोता सोई परम सुजान, सुनत चित रति करै।
सोई सेवक रसिक अनन्य, विमल जस विस्तरै॥
सुजस सुनत वरनत सुख पायौ। कीर-भृंग नारद-शुक गायौ॥
श्रीवृन्दावन सब सुखदानी। रतन-जटित वर भूमि रवानी॥
वर भूमि रवानि सुखद द्रुम-बल्ली, प्रफुलित फलित विविध वरनं।
नित शरद-बसंत मत्त मधुकर-कुल, बहु पतत्र नादहि करनं॥
नाना द्रुम-कुंज मंजु वर वीथी, वन बिहार राधा-रवनं।
तहाँ संतत रहत श्याम-श्यामा-सँग, श्रीहरिवंश-चरन-शरनं॥

(२)

रहत सदा सखि संगं, रास रंग रस रसाल उल्लासं।
लीला ललित रसालं, सम सुर तालं वरषत सुख-पुंजं॥
अतुलित रस वरषत सदा, सुख निधान वन वासि।
अद्‌भुत महिमा महि प्रगट, सुन्दरता की रासि॥
सुन्दरता की रासि, कनक दुति देह रुचि।
वारिज वदन प्रसन्न, हास मृदु रंग शुचि॥
सुभ्रू सुष्ट ललाट पट, सुन्दर करनं।
नैंन कृपा अविलोकि, प्रणत-आरति-हरनं॥

सुन्दर ग्रीव उरसि वनमालं। चारु अंश वर बाँहु विशालं॥
उदर सु नाभि चारु कटि देशं। चारु जानु शुभ चरन सु वेषं॥
शुभ चरन सु वेष मत्त गज वर गति, पर उपकार देह धरनं।
निज गुन विस्तार अधार अवनि पर, वानी विशद सु विस्तरनं॥
करुनामय परम पुनीत कृपा-निधि, रसिकअनन्य सभाभरनं।
जै जग उद्योत व्यास-कुल-दीपक श्रीहरिवंश-चरन-शरनं॥

(३)

सारासार विवेकी, प्रेम-पुंज अद्‌भुत अनुराग।
हरि-जस-रस-मधु-मत्त, सर्व त्यक्त्वा दुस्त्यज कुल कर्म॥
कर्म छाँड़ि कर्मठ भजे, ज्ञानी ज्ञान विहाइ।
व्रतधारी व्रत तजि भजे, श्रवणादिक चित लाइ॥
श्रवणादिक चित लाइ, जोग जप तप तजे।
औरौ कर्म सकाम, सकल तजि सब भजे॥
साधन विविध प्रयास, ते सकल विहावहीं।
श्रवन-कथन सुमिरन, सेवन चित लावहीं॥
अर्चन-वंदन अरु दासन्तन। सख्य और आत्मा समर्पन॥
ये नव लक्षण भक्ति बढ़ाई। तब तिन प्रेम लक्षणा पाई॥
पाई रस-भक्ति गूढ़ जुग-जुग जग, दुर्लभ भव इन्द्रादि विधिं।
आगम अरु निगम-पुरान अगोचर, सहज माधुरी रूप निधिं॥
अनभय आनँदकँद निजु सम्पति, गुपत सुरीति प्रकट करनं।
जै जग उद्योत व्यास-कुल-दीपक, श्रीहरिवंश-चरन-शरनं॥

(४)

प्रगटित प्रेम प्रकाशं, सकल जन्तु शिशरी-कृत चित्तं।
गत कलि तिमिर समूहं, निर्मल अकलंक उदित जग चन्द्रं॥
विशद चन्द्र तारातनय, शीतल किरन प्रकाश।
अमृत सींचत मम हृदय, सुखमय आनँद-रासि॥

सुखमय आनँद-रासि, सकल जन शोक-हर।
समुझि जे आये शरन, ते डरत न काल-डर॥
दियौ दान तिन अभय, द्वंद दुख सब घटे।
नित-नित नव-नव प्रेम, कर्म-बन्धन कटे॥
कटे कर्म-बन्धन संसारी। सुख-सागर पूरित अति भारी॥
विधिनिषेध-श्रृंखला छुड़ावै। निज आलय वन आनि बसावै॥
आलय वन बसत संग पारस के, आयस कनक समान भयं।
माँगौं मन मनसि दासि अपनी करि, पूरन काम सदा हृदयं॥
सेवक गुन-नाम आस करि वरनै, अब निजु दासि कृपा करनं।
जै जग उद्योत व्यास-कुल-दीपक, श्रीहरिवंश-चरन-शरनं॥

पढ़त-गुनत गुन-नाम, सदा सत्संगति पावै।
अरु बाढ़ै रसरीति, विमल वानी गुन गावै॥
प्रेम लक्षणा भक्ति, सदा आनँद हितकारी।
श्रीराधा जुग चरन, प्रीति उपजै अति भारी॥
निजु महल टहल नव कुंज में, नित सेवक सेवा करनं।
निशि-दिन समीप संतत रहै सु, श्रीहरिवंश-चरन-शरनं॥

❁ इति श्रीहित ध्यान एकादश प्रकरण की जय जय श्रीहित हरिवंश ❁

❁ श्रीहित मंगल गान प्रकरण ❁

छन्द चारि, राग-सूहौ विलावल

जै जै श्रीहरिवंश, व्यास-कुल-मण्डना।
रसिकअनन्यनि मुख्य गुरु, जन भय खंडना॥
श्रीवृन्दावन वास, रास रस भूमि जहाँ।
क्रीड़त श्यामा-श्याम, पुलिन मंजुल तहाँ॥

पुलिन मंजुल परम पावन, त्रिविध तहँ मारुत बहै।
कुंज भवन विचित्र शोभा, मदन नित सेवत रहै॥
तहाँ संतत व्यासनन्दन, रहत कलुष विहंडना।
जै जै श्रीहरिवंश, व्यास-कुल-मण्डना॥१॥

जै जै श्रीहरिवंश-चन्द्र उद्दित सदा।
द्विज-कुल-कुमुद प्रकाश, विपुल सुख सम्पदा॥
पर उपकार विचार, सुमति जग विस्तरी।
करुना-सिन्धु कृपालु, काल भय सब हरी॥
हरी सब कलि काल की भय, कृपा रूप जु वपु धर्‌यौ।
करत जे अनसहन निन्दक, तिनहुँ पै अनुग्रह कर्‌यौ॥
निरभिमान निर्वैर निरुपम, निष्कलंक जु सर्वदा।
जै जै श्रीहरिवंश-चन्द्र उद्दित सदा॥२॥

जै जै श्रीहरिवंश, प्रसंशित सब दुनी।
सारासार विवेकित, कोविद बहु गुनी॥
गुप्त रीति आचरण, प्रगट सब जग दिये।
ज्ञान-धर्म-व्रत-कर्म, भक्ति-किंकर किये॥
भक्ति हित जे शरण आये, द्वंद्व दोष जु सब घटे।
कमल कर जिन अभय दीने, कर्म-बन्धन सब कटे॥
परम सुखद सुशील सुन्दर, पाहि स्वामिन मम धनी।
जै जै श्रीहरिवंश, प्रसंशित सब दुनी॥३॥

जै जै श्रीहरिवंश, नाम-गुण गाइहै।
प्रेम लक्षणा भक्ति, सुदृढ़ करि पाइहै॥
अरु बाढ़ै रसरीति, प्रीति चित ना टरै।
जीति विषम संसार, कीरति जग विस्तरै॥

विस्तरै सब जग विमल कीरति, साधु-संगति ना टरै।
वास वृन्दाविपिन पावै, श्रीराधिका जु कृपा करैं॥
चतुर जुगल किशोर सेवक, दिन प्रसादहिं पाइहै।
जै जै श्रीहरिवंश, नाम-गुण गाइहै॥४॥

॥ इति श्रीहित मंगल गान द्वादश प्रकरण की जय जय श्रीहित हरिवंश ॥

श्रीहित पाके धर्मी प्रकरण

(१)

साधन विविध सकाम मति सब, स्वारथ सकल सबै जु अनीति।
ज्ञान-ध्यान-व्रत-कर्म जिते सब, काहू में नहिं मोहि प्रतीति॥
रसिक अनन्य निश॥न बजायौ, एक श्याम-श्यामा पद-प्रीति।
श्रीहरिवंश चरन निजु सेवक, विचलै नहीं छाँड़ि रसरीति॥

(२)

श्रीहरिवंश धरम्म प्रगट्ट, निपट्टकैं ताकी उपमा कौं नाहिंन।
साधन ताकौ सबै नव लक्षण, तत्छिन वेगि विचारत जाहि न॥
जो रसरीति सदा अविरुद्ध, प्रसिद्ध विरुद्ध तजत्त क्यौं ताहि न।
जो पै धरम्मी कहावत हौ तौ, धरम्मी धरम्म समुझ्झत काहि न॥

(३)

जो पै धरम्मिन सौं नहिं प्रीति, प्रतीति प्रमानत आन न आनिवौ।
एकहि रीति सबन्नि सौं हेत, समीति समेत समान न मानिवौ॥
बात सौं बात मिलै न प्रमान, प्रकृत्ति विरुद्ध जुगत्ति कौ ठानिवौ।
श्रीहरिवंश के नाम न प्रेम, धरम्मी-धरम्म समुझ्झौ क्यौं जानिवौ॥

(४)

श्रीहरिवंश-वचन्न प्रमानि कैं, शाकत संग सबै जु बिसारत।
संसृति माँझ वरयाइकैं पायौ जु, मानुष देह वृथा कत डारत॥
क्यौं न करत्त धरम्मिन कौ सँग, जानि बूझि कत आन विचारत।
जो पै धरम्मी मरम्मी हौ तौ, धरम्मिन सौं कत अंतर पारत॥

(५)

धरम्मी-धरम्म कह्यौ जु करौ, तौ धरम्मिन संग बड़ौ सबतें।
अपुनर्भव स्वर्ग जो नाहिं बराबर, तौ सुख मर्त्य कहौ कब तें॥
कहौ काहे प्रमान वचन्न बिसारत, प्रेमी अनन्य भये जबतें।
श्रीहरिवंश कही जु कृपा करि, साँचौ प्रबोध सुन्यौं अब तें॥

(६)

श्रीहरिवंश जु कही श्याम-श्यामा-पद-कमल-संगी सिर नायौ।
ते न वचन मानत गुरु-द्रोही, निशि-दिन करत आपुनौ भायौ॥
इत व्यौहार न उत परमारथ, बीचहिं-बीच जु जनम गँवायौ।
जो धर्मिनु सौं प्रीति करत नहिं, कहा भयौ धर्मी जु कहायौ॥

(७)

करौ श्रीहरिवंश-उपासक संग, जु प्रीति तरंग सुरंग बह्यौ।
करौ श्रीहरिवंश की रीति सबै, कुल-लोक-विरुद्ध जु जाइ सह्यौ॥
करौ श्रीहरिवंश के नाम सौं प्रीति, जा नाम-प्रताप धरम्म लह्यौ।
जु धरम्मी-धरम्म-स्वरुप कह्यौ, बिसरौ जिन श्रीहरिवंश कह्यौ॥

(८)

श्रीहरिवंश-धरम्म जे जानत, प्रीति की ग्रंथि तहीं मिलि खोलत।
श्रीहरिवंश-धरम्मिनु-माँझ, धरम्मी सुहात धरम्म लै बोलत॥
श्रीहरिवंश धरम्मी कृपा करैं, तासु कृपा रस-मादिक डोलत।
श्रीहरिवंश की वानी-समुद्र कौ, मीन भयौ जु अगाध कलोलत॥

(९)

व्रत-संयम-कर्म-सुधर्म जिते, सब शुद्ध विरुद्ध पिछानत हैं।
अपनी-अपनी करतूत करैं, रस-मादिक शंक न आनत हैं॥
हरिवंश-गिरा-रसरीति प्रसिद्ध, प्रतीति प्रगट्ट प्रमानत हैं।
बलि जाउँ अपन्ने धरम्मिनु की, जे धरम्मी धरम्महिं जानत हैं॥

(१०)

श्रीहरिवंश-धरम्म सुनंत जु, छाती सिरात धरम्मिनु की।
धरम्म सुनंत प्रसन्न ह्वै बोलत, बोलनि मीठी धरम्मिनु की॥
धरम्म सुनंत पुलक्कित रोमनि, हौं बलि प्रेमी धरम्मिनु की।
जु धरम्म सुनाय धररम्महिं जाँचत, चाहौं कृपा जु धरम्मिनु की॥

छप्पय

श्रीहरिवंश प्रसिद्ध धर्म, समुझै न अलप तप।
समुझौ श्रीहरिवंश कृपा, सेवहु धर्मिनु जप॥
धर्मी बिनु नहिं धर्म, नाहिं बिनु धर्म जु धर्मी।
श्रीहरिवंश-प्रताप. मर्म जानहिं जे मर्मी॥
श्रीहरिवंश नाम धर्मी जु रति, तिन शरण्य संतत रहै।
सेवक निशि-दिन धर्मिनु मिलैं, श्रीहरिवंश-सुजस कहै॥

* इति श्रीहित पाके धर्मी त्रयोदश प्रकरण की जय जय श्रीहित हरिवंश *

❁ श्रीहित काचे धर्मी प्रकरण ❁

(१)

श्रीहरिवंश-धरम्मिन के सँग, आगैं ही आगैं जु रीति वखानत।
आपुनौं जानि कहैं जु मिलै मन, उत्तर फेरि चवग्गुन ठानत॥
बैठत जाय विधर्मिन में तब, बात धरम्म की एकौ न आनत।
काचे धरम्मिनु के सुनौ छन्द, धरम्मी धरम्म मरम्म न जानत॥

(२)

बातनि जूठनि खान कहैं, मुख देत प्रसाद अनूठौइ छाँड़त।
ग्रन्थ प्रमानिकैं जो समुझाइयैं, तौ तब क्रोध रार फिर माँड़त॥
तच्छिन छाँड़ि प्रेम की बातहिं फेरि जाति-कुल-रीति प्रमानत।
काचे धरम्मिनु के सुनौ छन्द, धरम्मी धरम्म मरम्म न जानत॥

(३)

धरम्मिनु माँझ प्रसन्न ह्वै बैठत, जाइ विधर्मिनु माँझ उपासत।
लालच लागि जहाँ जैसैं तहाँ तैसैं, सोई-सोई तिन मध्य प्रकाशत॥
बादहिं होत कुम्हार कौ कूकर, खाली हृदय गुरु रीति न मानत।
काचे धरम्मिनु के सुनौ छन्द, धरम्मी धरम्म मरम्म न जानत॥

(४)

नाना तरंग करत्त छिनहिं-छिन, रोवत रेंट न लार सँभारत।
तच्छिन प्रेम जनाइ कहंत जु, मेरी सी रीति काहे अनुसारत॥
तच्छिन झगरि रिसाइ कहंत जु, मेरी बराबर औरनि मानत।
काचे धरम्मिनु के सुनौ छन्द, धरम्मी धरम्म मरम्म न जानत॥

(५)

मेरौ सौ प्रेम मेरौ सौ कीर्तन, मेरी सी रीति काहैं न अनुसारत।
मेरौ सौ गान मेरौ सौ बजाइवौ, मेरौ सौ कृत्य सबै जु बिसारत॥
छाँड़ि मर्जाद गुरुन्न सौं बोलत, कंचन-काँच बराबर मानत।
काचे धरम्मिनु के सुनौ छन्द, धरम्मी धरम्म मरम्म न जानत॥

(६)

देखे जु देखे भले जु भले तुम, आपुनौ और परायौ न जानत।
हौं जु सदा रसरीति बखानत, मेरी बराबर ठागनि मानत॥
कैसैं धौं पाऊँ तिहारे हृदय कौं, आन द्वार कैं मोहि न जानत।
काचे धरम्मिनु के सुनौ छन्द, धरम्मी धरम्म मरम्म न जानत॥

(७)

और तरंग सुनौ अति मीठी, सखीनु के नाम परस्पर बोलत।
तच्छिन केश गहंत मुष्ट हनि, साकत शुद्ध बचावत डोलत॥
तच्छिन बोलैं तू प्रेत तू राक्षस, फेरि परस्पर जाति प्रमानत।
काचे धरम्मिनु के सुनौ छन्द, धरम्मी धरम्म मरम्म न जानत॥

(८)

जान्यौ धरम्म देखी रसरीति जु, निष्ठुर बोलत वदन प्रकाशित।
ऐसैं न वैसैं रहे मँझरैढव, पाछिलियौ जु करी निरभासित॥
ह्वै हैं फेरि जैसे के तैसे हम, वारे तें आये सन्यासिनु मानत।
काचे धरम्मिनु के सुनौ छन्द, धरम्मी धरम्म मरम्म न जानत॥

(९)

एक रिसाने से रूखे से दीखत, पूँछत रीति भभूकत धावत।
एक रँगमगे बोलत चालत, मामिलेहु वपुरे जु जनावत॥
एक वदन्न कै साँची-साँची कहैं, चित्त सचाई की एकौ न आनत।
काचे धरम्मिनु के सुनौ छन्द, धरम्मी धरम्म मरम्म न जानत॥

(१०)

एक धरम्म समुझ्झे बिनाऽव, गुसाँईं के ह्वै जु जगत्र पुजावत।
मूल न मन्त्र टटोरा की रीति, धरम्मिनु पूँछत वदन दुरावत॥
एक मुलम्मा सौ देत उघारि जु, वल्लभ सौं वल्लभ परमानत।
काचे धरम्मिनु के सुनौ छन्द, धरम्मी धरम्म मरम्म न जानत॥

(११)

एक गुरुन्न सौं वाद करन्त जु, पंडित मानी ह्वै जीभहिं ऐंठत।
एक दरब्ब के जोर बरब्बट, आसन चाँपि सभा मधि बैठत॥
एक जु फेरि रीति उपदेशत, एक बड़े ह्वै न बात प्रमानत।
काचे धरम्मिनु के सुनौ छन्द, धरम्मी धरम्म मरम्म न जानत॥

(१२)

एक धरम्मी अनन्य कहाइ, बड़ाई कौं न्यारी ये बाजी सी माँड़त।
और के बाप सौं बाप कहंत, दरब्ब कैं काज धरम्महिं छाँड़त॥
बोलत बोल बटाऊ से लागत, ह्वै गुरु मानी न बात प्रमानत।
काचे धरम्मिनु के सुनौ छन्द, धरम्मी धरम्म मरम्म न जानत॥

(१३)

परखे सुनहु सुजान, जहाँ कछु और कचाई।
भक्त कहैं परसन्न, नतरुता कहैं बुरवाई॥
दियैं सराहैं सुख रहैं, दुख में दिन-राती।
खैवे कौं जु सजाति, खरच कौं होत विजाती॥

(१४)

लै उपदेश कहाइ अनन्य, अन्हाइ अनर्पित जाइ गटक्कत।
आश करैं विषयीन कैं आगैं जु, देखे में जोरत हाथ लटक्कत॥
केतिक आयु कितेक सौ जीवन, काहे विनासत काज हटक्कत।
श्रीहरिवंश-धरम्मिनु छाँड़िकैं, घर-घर काहैं फिरत भटक्कत॥

(१५)

साकत-संग अगिन-लपट्ट, लपट्ट जरत्त क्यौं संगति कीजै।
साधु सुबुद्धि समान सु संतनि, जानिकैं शीतल संगति कीजै॥
एक जु काचे प्रकृत्ति विरुद्ध, प्रकृत्ति विरुद्ध करैं तौ कहा कीजै।
जे आग कैं दाझे गये भजि पानी में, पानी में आग लगै तौ कहा कीजै॥

(१६)

प्रीति भंग वरनत रस रीतहिं, श्रीहरिवंश-वचन बिसरावहु।
आप-आपनी ठौर जहाँ तहँ, करि विरुद्ध सबपै निदरावहु॥
एक संसार दुष्ट की संगति, ताहू में तुम पुष्ट करावहु।
विनती करहुँ सकल धर्मिनु सौं, धर्मी ह्वै जिन नाम धरावहु॥

(१७)

कवित्त

स्वारथ सकल तजि गुरु-चरननि भजि,
गुन-नाम-सुनि कथि संतनि सौं संग करि।
काल-व्याल मुख पर्‌यौ कफ-वात-पित्त भर्‌यौ,
भ्रम्यौ कत, अनन्य कहे की जिय लाज धरि॥

सेवक निकट रसरीति प्रीति मन धरि,
हित हरिवंश कुल-कानि सब परिहरि।
काचे रसिकनि सौं विनती करत ऐसी,
गोविंद-दुहाई भाई ! जो न सेवौ श्यामा-हरि॥

(१८)

छप्पै

प्रगटित श्रीहरिवंश सूर, दुन्दुभि बजाइ बल।
मदन-मोह-मद मलित, निदरि निर्दलित दम्भ-दल॥
भर्म भग्य भयभीत, गर्व दुर्जन रज खण्डन।
लोभ-क्रोध कलि कपट, प्रबल पाखण्ड विहंडन॥
तृष्णा-प्रपंच-मत्सर-विसन, सर्व दण्ड निर्बल करैं।
शुभ-अशुभ-दुर्ग-विध्वंश बल, तब जयति-जयति जग उच्चरैं॥

* इति श्रीहित काचे धर्मी चतुर्दश प्रकरण की जय जय श्रीहित हरिवंश *

❁ श्रीहित अलभ्य लाभ प्रकरण ❁

नाराच छन्द

हरिवंश नाम है जहाँ तहाँ-तहाँ उदारता,
सकामता तहाँ नहीं कृपालुता विशेषिये।
हरिवंश नाम लीन जे अजातशत्रु ते सदा,
प्रपंच-दम्भ आदि जे तहाँ कछू न पेखिये॥
हरिवंश नाम जे कहैं अनन्त सुक्ख ते लहैं,
दुराप्य प्रेम की दशा तहाँ प्रत्यक्ष देखिये।
सोइ अनन्य साधु सो जगत्र पूजिये सदा,
सु धन्य-धन्य विश्व में जनम्म सत्य लेखिये॥१॥

हरिवंशचन्द्र जो कही सु चित्त ह्वै सबै लही,
वचन्न चारु माधुरी सु प्रेम सौं पिछानियैं।
सुने प्रपन्न जे भये अभद्र सर्व कैं गये,
तिन्हें मिलैं प्रसन्न ह्वै न जाति भेद मानियैं॥
सु भाग लागि पाइहैं प्रसंश कंठ लाइहैं,
सिराइ नैंन देखिकैं अभेद बुद्धि आनियैं।
कृपालु ह्वै सु भाखिहैं धरम्म पुष्ट राखिहैं,
श्रीव्यासनन्द नाम कौ अलभ्य लाभ जानियैं॥२॥

हरिवंश नाम सर्व सार छाँड़ि लेत बहुत भार,
राज विभौ देखिकैं विषय विषम्म भोवहीं।
जौरु होत साधु-संग आन करत प्रीति भंग,
मान काज राजसीनु के जु मुक्ख जोवहीं॥
जहाँ तहाँ अन्न खात सखी कहत आपु गात,
सकल द्यौस द्वंद जात रात सर्व सोवहीं।
प्रसिद्ध व्यासनन्द-नाम जान बूझि छोड़हीं,
प्रमाद तें लियैं बिना जनम्म बाद खोवहीं॥३॥

हरिवंश-नाम-हीन खीन दीन देखियैं सदा,
कहा भयौ बहुज्ञ ह्वै पुरान-वेद पढ्ढहीं।
कहा भयौ भयैं प्रवीन जानि मानियैं जगत्र,
लोक रीझि शोभ कौं बनाइ बात गढ्ढहीं॥
कहा भयौ कियैं करम्म यज्ञ-दान देत-देत,
फलनि पाइ उच्च-उच्च देव-लोक चढ्ढहीं।
परयौ प्रवाह काल कैं कदापि छूटिहै नहीं,
श्रीव्यासनन्द-नाम जो प्रतीति सौं न रट्टहीं॥४॥

✤ इति श्रीहित अलभ्य लाभ पंचदश प्रकरण की जय जय श्रीहित हरिवंश ✤

❁ श्रीहित मान सिद्धांत प्रकरण ❁

दोहा

वानी श्रीहरिवंश की, सुनहु रसिक चित लाइ।
जिहिं विधि भयौ अबोलनौ, सो सब कहौं समुझाइ॥१॥
श्रीहरिवंश जु कथि कही, सोरु सुनाउँ गाइ।
वानी श्रीहरिवंश की, नित मन रही समाइ॥२॥
श्रीहरिवंश अबोलनौ, प्रगट प्रेम रस सार।
अपनी बुद्धि न कछु कहौं, सो वानी उच्चार॥३॥
हित हरिवंश जु क्रीड़हीं, दंपति रस-समूतल।
सहज समीप अबोलनौ, करत जु आनँद मूल॥४॥
काहे कौं डारत भामिनी, हौं जु कहत इक बात।
नैंक वदन सन्मुख करौ, छिन-छिन कलप सिरात॥५॥
वे चितवत तुव वदन-विधु, तू निजु चरन निहारत।
वे मृदु चिवुक प्रलोवहीं, तू कर सौं कर टारत॥६॥
वचन अधीन सदा रहै, रूप-समुद्र अगाध।
प्राण रवन सौं कत करत, बिनु आगस अपराध॥७॥
चितयौ कृपा करि भामिनी, लीने कंठ लगाइ।
सुख-सागर पूरित भये, देखत हियौ सिराइ॥८॥
सेवक शरन सदा रहै, अनत नहीं विश्राम।
कै वानी हरिवंश की, कै हरिवंशहि नाम॥९॥

☆ इति श्रीहित मान सिद्धान्त अथवा अबोलनौ सिद्धान्त षोड़ष प्रकरण की जय
जय श्रीहित हरिवंश ☆

❁ इति श्रीहित नाद कुल भूषण श्रीसेवक जी (श्रीदामोदरदास जी) महाराज कृत
श्रीहित सेवकवाणी संपूर्ण की जै जै श्रीहित हरिवंश ❁

श्रीसेवकवाणी – फलस्तुति

जयति-जयति हरिवंश, नाम-रति सेवकवानी।
परम प्रीति रसरीति, रहसि कलि प्रगट वखानी॥
प्रेम-संपती-धाम, सुखद विश्राम धरम्मिन।
भनत-गुनत गुन गूढ़, भक्त भ्रम भजत करम्मिन॥
श्रीव्यासनन्द-अरविंद-चरन मद, तासु रंग रस राचहीं।
जैश्रीकृष्णदास हित हेत सौं, जे सेवकवानी बाँचहीं॥

–श्रीहित कृष्णदासजी भावुक

कै हरिवंशहि नाम धाम वृन्दावन बस गति।
वाणी श्रीहरिवंश सार संच्यौ सेवक मति॥
पठन श्रवण जो करै प्रीति सौं सेवक वानी।
भव निधि दुस्तर जदपि होय तिहिं गोपद-पानी॥
श्रीव्यासनन्द परसाद लहि, जुगल रहसि दरसै जु उर।
भनि वृन्दावन हित रूप बलि, सुख विलसैं भावुक धाम धुर॥

ग्रन्थ सिन्धु तें सोधि, रंग कलि माँहिं बढ़ायौ।
यह हित कृपा प्रसाद, अमी भाजन भरि पायौ॥
रसिक मनौं सुर सभा, आनि तिनकौं दरसायौ।
श्रीसेवक निजु गिरा, मोहिनी बाँटि पिवायौ॥
पठन-श्रवण निशि-दिन करै, दम्पति सु धाम सुख लहै अलि।
वाणी स्वरूप हरिवंश तन, भनि वृन्दावन हित रूप बलि॥

अक्षर अद्भुत चटक, अटक अर्थनि की गहरी।
रचना नाना छन्द, परत शोभा की लहरी॥
राधा विपुल सुहाग, भरी रत्नाकर वानी।
कानन कुंज अनन्त, कूल मित परै न वखानी॥

अति कमनी वपु जो हरि लखै, सोइ दरसि परयौ हरिवंश तन।
भनि वृन्दावन हित रूप बलि, सेवक जु गिरा नित बन्दि मन॥

बन्दिय सेवक मुख की वानी।
श्रीहरिवंश नाम की प्रभुता, जिन बहु भाँति वखानी॥
अनुभव जनित रची छंदन, दम्पति-रति-सदन कहानी।
रसिकनि श्रवन सुधा अँचवाई, को ऐसौ बड़दानी॥
भक्त-भूप हित-पथ जु उजागर, दाइक मान अमानी।
आसय गहर उदधि हूँ तें अति, जिन जानी तिन जानी॥
जहाँ रस-रतन भये उतपति कहूँ, सुने न लघु नद पानी।
रसिक जौहरिनु परखे कीमत, करत बुद्धि बौरानी॥
हित-दत विभौ कोष अधिकारी, श्रीसेवक अगवानी।
कृपा बिना कहि काहि फुरै अस, उक्ति-जुक्ति रस-सानी॥
सब धर्मनि कौ धर्म शिखामणि, तहाँ बुद्धि ठहरानी।
श्रीहरिवंश हियैं की हिलगनि, जातें रही न छानी॥
जयति प्रथम पद पूजन सर्वोपरि श्रीराधारानी।
व्यासनन्द बिनु कौंन चितावै, कानन सुखनि निसानी॥
मुरलीधर-अरधंगी-पद्धति, आगम-निगम वखानी।
वृन्दावन हित रूप अनन्य धर्म की धुज फहरानी॥

—चाचा श्रीहित वृन्दावनदासजी

सेवक सेवकवानी बोलौ।
रूप-रंग-रस-मद में छाके, कुंजनि-कुंजनि डोलौ॥
जाकैं पढ़ैं-सुनैं अरु गायैं, उपजत प्रेम अमोलौ।
रसिक मुकुन्द सुमिरि हित चित में, कपट-कपाटनि खोलौ॥

—श्रीहित रसिक मुकुन्दजी

मन-क्रम-वचन त्रिशुद्ध न कोऊ, सेवक सौ हरिवंश उपासक।
आन धरम्मिन संग नहीं, हरिवंश धरम्मिन सौं बिसवासक॥
हरिवंश पतिव्रत लै निवह्यौ, दुख पाइ खिस्याइ रहे उपहासक।
हरिवंश कृपा रस मत्त सदा, सोई 'नाथ' कहै अब यामें कहा सक॥

—श्रीनाथ भट्टजी

श्रीसेवक वानी जु यह, अति अगाध मत गूढ़।
बिरलौ कोई समुझई, हित-मारग-आरूढ़॥
हित-मारग-आरूढ़, भाव भागौत मिलै सब।
चार वेद सुस्मृति जु चार, अवगाहि लेहि जब॥
तब पावै सेवक ह्वदै, जु हित मारग उपदेसिय।
हितबल्लभ गुरु कृपा बल, जो समुझै कोउ धीर धिय॥

—श्रीहित हितबल्लभजी

सकल प्रपंच विनास होत, पढ़ि सेवकवानी।
श्रीवृन्दावन वास होत, पढ़ि सेवकवानी॥
व्यासनन्द-पद-प्रीति होत, पढ़ि सेवकवानी।
श्रीराधाबल्लभ मीत होत, पढ़ि सेवकवानी॥
पढ़ियैं नित हित रंग सौं, सेवकवानी प्रेम भरि।
सेवकवानी की कृपा, रंगमहल की टहल करि॥

—श्रीहित वृन्दावनदासजी (पटना वाले)

प्रथम शुभ नाम हरिवंशचंद्र कहौ तासौं,
होइ ह्वद प्रकास वास वृन्दावन दानी।
प्रेम रस मूरति हितआली जू के जस कौं सुनि,
सुबस होत लाल-लाड़िली सु जानी॥
कर्म-ज्ञान खंडि भर्म खोयौ है सब जग,
मग शुद्ध भक्ति गुरु सर्वसु प्रमानी।

'परमानंद' प्यारे हितजी कौ धर्म चाहौ तौ,
चित्त दै पढ़ौ हो रसिक श्रीसेवकवानी॥

राधाबल्लभी होय तब, जब सेवकवानी जान।
हित रसिकनि की सभा में, 'परमानंद' प्रमान॥

—श्रीहित परमानन्ददासजी

अक्षर चारु बिचार, सार श्रुति मन्त्र दृढ़ायौ।
हरि-गुरु कौं एकत्त, प्रगट वानी करि गायौ॥
धर्म अनन्य प्रकाशि, जगत में डंकौ दीनौं।
भव-खण्डन हरि-नाम, वंश बिनु कबहुँ न लीनौं॥
श्रीसेवकवानी विदित, नितप्रति चित मंगल करन।
'दास' सदा जाँचत यही, हियैं बसहु भोरी-चरन॥

—श्रीहितदास जी (भोरीसखी जी के कृपापात्र)

जै सेवक कौ सीस, जहाँ हित-धर्म धरयौ है।
जै सेवक कौ भाल, लिख्यौ हित-भोग खरौ है॥
जै सेवक के नैंन, जहाँ हित-छबिहि भरी हैं।
जयति नासिका सेवक, हित-सुख-वास धरी हैं॥
प्रियादास लखी कस रति प्रिया, भलैं हितद सेवक भये।
जै सेवक की जीभ जहँ, हित-नाम-सुरस-जस-गुन नये॥

जै सेवक कौ हीय, जहाँ हित-मूर्ति समी है।
जै सेवक के प्रान, जहाँ हित-गिरा रमी है॥
जै सेवक कौ चित्त, जहाँ हित-नाम समायौ।
जै सेवक मन छैल, रूप-रँग हितहिं बुड़ायौ॥
जै सेवक नेह बुद्धि जै, प्रियादास बाँधि हित लपटै रह्यौ।
जै सेवक कौ कण्ठ जहाँ, हित-स्वाद गटकि अटकै रह्यौ॥

—श्रीहित प्रियादासजी

सुपने सम्पति दई गुरुन सो प्रगट वखानी।
श्रीमुख कौ निरधार, सार रस सेवकवानी॥
प्रिया प्रेम रस ढरी, सुनौ प्रीतम अभिलाषैं।
हित-प्रताप विस्तर्‌यौ, सोई सेवक ह्वै भाखैं॥
प्रिया-हिलग पूरी करनि, प्रीतम खोली गंश।
परम धर्म हरिवंश कौ, सेवक खोली गंश॥

—श्रीहित गोविन्दअलीजी

नमो-नमो हित सेवकवानी।
जा मधि श्रीहरिवंश-नाम-गुन, श्रीसेवकजू प्रगट वखानी॥
हित-जस-रस की रीति दिखाई, प्रेमी रसिकनि कौं सुखदानी।
निशि-दिन जो गावै मन लावै, हित स्वामिनीशरण मन मानी॥

—श्रीहित स्वामिनीशरणजी

सेवक दरसायौ प्रगट, हित-मग सब सुख सार।
चलैं तिही अनुकूल जे, पावैं नित्यबिहार॥
सेवै श्रीहरिवंश-पद, सेवक सो ही मानि।
और कहै औरहिं भजै, सो विभचारी जानि॥
सेवक-गिरा प्रमाण करि, सेवै व्यासकुमार।
सेवक सोई जानिये, और सकल व्यभिचार॥
सेवक कही सोई करैं, परसैं नहिं कछु आन।
सेवक सोई जानिये, रसिकअनन्य सुजान॥

हित कौं लाड़ लड़ायौ नीकैं हित कौं गायौ।
हित बिनु और न ध्यायौ, बरबस हित प्रगटायौ॥
हित कौ मिही स्वरूप, गिरा मधि प्रगट बतायौ।
हित कौ बाँकौ पन्थ, कृपा करि ताहि जतायौ॥
हित-चरन-कमल-मकरन्द कौ, बलि मधुप भयौ हित उच्चरै।
हितधर्म-सूर साँचौ सकृत, श्रीसेवक की सर को करै॥

श्रीहरिवंश जु तजौं, तौ मोहिं हरिवंश-दुहाई।
श्रीहरिवंश न भजौं, तौ मोहिं हरिवंश-दुहाई॥
हित-बिनु और न गाऊँ-ध्याऊँ, यह प्रन कीयौ।
हीयौ धनि-धनि, वंश बिना हरि नाम न लीयौ॥
जिहिं उघरि मिले हरिवंश जू, बलि अलि किशोरि अस को वियौ।
हितधर्म-वीर-बाँकौ रसिक, बलि बलित विजय डंकौ दियौ॥

जहँ लौं धामी-धाम, सकल हित ही कौं गायौ।
हित ही श्यामा-श्याम, रमित हित सबहिं बतायौ॥
हित ही विद्या-मन्त्र, सु हित ही कारन-कारज।
हित ही परम स्वतन्त्र, सु हित ही जे आचारज॥
हित रमि सु रह्यौ तन-मन हियैं, 'अलि' रोम-रोम रह्यौ हितहिं पुर।
जिन व्रत अनन्य बाँकौ लियौ, जै श्रीसेवक हित धर्म धुर॥

दोउ दोउन तें अधिक, अधिक पावस-जलधर से।
दोउ दोउन पै उररि-उररि, हिय नेह सु वरषे॥
श्रीराधा बिनु लखौं, फुटौ दृग श्रीहित भाखी।
श्रीहरिवंशहि लखौं, इन सु वानी वर साखी॥
बलि अलि किशोरि हित पूज्य की, स्वामिनि तें सेवक कियौ।
वानी-वारिध मीन ह्वै, हित रसिकनि कछु इक पियौ॥

ऊन्यौ हियौ भरायौ, गढ़हा में प्रगटायौ।
ऐसौ कछु जु दवायौ, गुरु तें शिष्य करायौ॥
असु लौं दाव धरायौ, अपनौं दाव लिवायौ।
ऐ पै नाहिं अघायौ, सेवक-गिरा रचायौ॥
बलि अलि किशोरि गोयौ बहुत, छिप्यौ न पै परचौ दियौ।
धनि-धनि या हित नेह कौं, स्वामी तें सेवक कियौ॥

राधे बिनु नहिं कहौं-सुनौं, हित निजु मुख भाखी।
वंश बिना हरि कहौं न, इन निज टेक सु राखी॥
सपथ करौं तृन छियैं, सु हितजू यौं कथि गाई।
इन कछु अधिकी कही, मोहि हरिवंश-दुहाई॥
श्रीसेवकवानी हृदय धरि, यह भेव सहज सोइ जानिहै।
सेव्य-गिरा सेवक-गिरा, सकृत कोऊ पहिचानिहै॥

श्रीराधा द्वैऽक्षरा, परा विद्या हित गाई।
मन्त्र रु विद्या दोउ, इनन हरिवंश दृढ़ाई॥
श्रवन-कथन गुन सेव्य सु, हित राधैव सु भाखी।
इन हित-भजतनि भजौं, लजौं नहिं टेक जु राखी॥
श्रीसेवकवानी की कृपा, भेव भलैं पहिचानिहै।
सेव्य-गिरा सेवक-गिरा, बिरलौ कोऊ जानिहै॥

—श्रीहित किशोरीशरण 'अलिजी'

श्रुति-विस्तारित ज्ञान, ताहि नहिं आदर दीयौ।
आगम-तन्त्र-पुरान-सार सौं, चित नहिं कीयौ॥
पुनि नाना मतवाद, तिनहिं नीरस करि भाख्यौ।
चातक-व्रतहिं निवाहि, नीर हित रसना चाख्यौ॥
आनक दै हरिवंश हित, सर्वोपरि निधरक कह्यौ।
श्रीसेवक हित कौ मरम, भली-भाँति नीकैं लह्यौ॥

—स्वामी श्रीहितदासजी

उमग्यौ हिय हेत रह्यौ न गयौ, पलटौ बिनु लियैं हियौ अकुलावै।
स्वामिनि शिष्य-स्वरूप धरयौ, गरुवौ अनुराग कहा न करावै॥
हरुवौ हरि, वंश बिना न कह्यौ, कछु सेवकवानी में दरसावै।
'ध्रुव' अल्प मती न रती करिहैं, हित-पंथ मिही कोउ बिरलौ पावै॥

—बाबा श्रीहित ध्रुवअलीशरणजी

प्रीति पूर्वक श्रीसेवकवाणी जी का पाठ करने और मनन करने से निम्नांकित ज्ञान और विश्वास प्राप्त होता है—

१. श्रीहरिवंश ही परम तत्व हैं, आत्मा और परमात्मा हैं।
२. श्रीहरिवंश ही रस और श्रीहरिवंश ही रसिक हैं।
३. श्रीहरिवंश ही प्रेम और श्रीहरिवंश ही हित हैं।
४. श्रीहरिवंश ही परम साध्य और श्रीहरिवंश ही परम साधन हैं।
५. श्रीहरिवंश ही उपास्य और श्रीहरिवंश ही उपासक हैं।
६. श्रीहरिवंश ही प्रिया, प्रियतम, सखीगण और वृन्दावन हैं।
७. इस संसार से लेकर समस्त धाम, धामी और सम्पूर्ण अवतार श्रीहरिवंश का जस विलास है और श्रीश्यामा-श्याम, सहचरि वृन्द तथा श्रीवृन्दावन श्रीहरिवंश का रस विलास है।
८. श्रीहरिवंश का जस विलास ज्ञेय और रस विलास प्रेय है।
९. दुस्तर भव निधि (सुदृढ़ भव) से पार होने का एकमात्र आधार श्रीहरिवंश नाम नौका ही है।
१०. श्रीहरिवंश नाम ही प्रेम-मूल है।
११. श्रीहरिवंश नाम जप से प्रिया-प्रियतम प्रसन्न होते हैं।
१२. श्रीहरिवंश नाम लौकिक तथा अलौकिक सिद्धियों का दाता है और श्रीवृन्दावन रस माधुरी का प्रदाता है।
१३. श्रीहरिवंश धर्म (अनन्य धर्म) का सम्यक ज्ञान धारण करने की प्रेरणा और उसके सांगोपांग निर्वाह करने की शक्ति प्राप्त होती है।
१४. श्रीहरिवंश-चरणों में और श्रीहरिवंश-उपासकों के चरणों में अनन्य प्रीति प्राप्त होती है।
१५. श्रीहरिवंश नाम और श्रीहरिवंशवाणी में प्रीति होती है।
१६. काचे धर्मी और पाके धर्मी के स्वरूप की जानकारी होने के साथ ही पाके धर्मी बनने की प्रेरणा मिलती है।
१७. श्रीहरिवंशचन्द्र जू की रसरीति का ज्ञान प्राप्त होता है।

-किशोरीशरण 'अलि'

✳

✻ श्रीहित राधाबल्लभो जयति ✻
✻ श्रीहित हरिवंश चन्द्रो जयति ✻

श्रीराधाबल्लभ-अष्टयाम

श्रीहित हरिवंशजू कौ मंगल–

जै जै श्रीहरिवंश, व्यास-कुल-मण्डना।
रसिकअनन्यनि मुख्य गुरु, जन भय खंडना॥
श्रीवृन्दावन वास, रास रस भूमि जहाँ।
क्रीड़त श्यामा-श्याम, पुलिन मंजुल तहाँ॥
पुलिन मंजुल परम पावन, त्रिविध तहँ मारुत बहै।
कुंज भवन विचित्र शोभा, मदन नित सेवत रहै॥
तहाँ संतत व्यासनन्दन, रहत कलुष विहंडना।
जै जै श्रीहरिवंश, व्यास-कुल-मण्डना॥१॥

जै जै श्रीहरिवंश-चन्द्र उद्दित सदा।
द्विज-कुल-कुमुद प्रकाश, विपुल सुख सम्पदा॥
पर उपकार विचार, सुमति जग विस्तरी।
करुना-सिन्धु कृपालु, काल भय सब हरी॥
हरी सब कलि काल की भय, कृपा रूप जु वपु धर्यौ।
करत जे अनसहन निन्दक, तिनहुँ पै अनुग्रह कर्यौ॥
निरभिमान निर्वैर निरुपम, निष्कलंक जु सर्वदा।
जै जै श्रीहरिवंश-चन्द्र उद्दित सदा॥२॥

जै जै श्रीहरिवंश, प्रसंशित सब दुनी।
सारासार विवेकित, कोविद बहु गुनी॥

गुप्त रीति आचरण, प्रगट सब जग दिये।
ज्ञान-धर्म-व्रत-कर्म, भक्ति-किंकर किये॥
भक्ति हित जे शरण आये, द्वंद्व दोष जु सब घटे।
कमल कर जिन अभय दीने, कर्म-बन्धन सब कटे॥
परम सुखद सुशील सुन्दर, पाहि स्वामिन मम धनी।
जै जै श्रीहरिवंश, प्रसंशित सब दुनी॥३॥

जै जै श्रीहरिवंश, नाम-गुण गाइहै।
प्रेम लक्षणा भक्ति, सुदृढ़ करि पाइहै॥
अरु बाढ़ै रसरीति, प्रीति चित ना टरै।
जीति विषम संसार, कीरति जग विस्तरै॥
विस्तरै सब जग विमल कीरति, साधु-संगति ना टरै।
वास वृन्दाविपिन पावै, श्रीराधिका जु कृपा करैं॥
चतुर जुगल किशोर सेवक, दिन प्रसादहिं पाइहै।
जै जै श्रीहरिवंश, नाम-गुण गाइहै॥४॥

मधुरितु माधव मास सुहाई।
भाग प्रकाश व्यासनन्दन मुख, फूल्यौ कमल अमल छबि छाई॥
श्रवत मधुर मकरन्द सुयश निजु, कुंज केलि सौरभ सरसाई।
सेवत रसिक अनन्य भ्रमर मन, जैश्रीकृष्णदास सुखसार सदाई॥

मंगल समय–

प्रात समय श्रीतारा सुत कौ, उठतहि रसना लीजै नाम।
अधम-उधारन कलिमल तारन, प्रेम भक्ति दृढ़ पूरन काम॥
वंशी रूप जगत हितकारी, लाड़ लड़ावत श्यामा-श्याम।
जैश्रीजोरीलालजू की आशा पुजवौ, वास देहु श्रीवृन्दावन धाम॥

श्रीजमुना जगत पर जगमगै।
पतित पावन होत तबही, जबहिं जल-कन लगै॥
असित वारि विकार कौं असि, नगन पैनी धार।
पाप श्राप अरु ताप तरु बहु, उग्र नाम कुठार॥
सरन-रक्षक विजय पंजर, भ्रात-त्रास असंग।
नीर निधि भव पार ह्वै नर, निरखि विमल तरंग॥
भानु-तनुजा धर्म-अनुजा, विदित वेद-पुरान।
सदा सारद-शंभु-नारद, करत गुन-गन-गान॥
कमल लोचन कूल जाकैं, करत केलि कलोल।
नित्य रास-विलास विहरत, मध्य तोय झकोल॥
घाट सुघटित जटित रतननि, हंस-सारस आन।
देखि विवि प्रतिबिम्ब भामिनि, सहज उपजत मान॥
विटप डार सुबेलि कुसुमित, नमित झूलत नीर।
विकच कल कल्हार लुब्धे, वास षटपद-भीर॥
महा महिमा नृपति तीरथ, पूरि पूरन काम।
देत सब सुख हित दामोदर, तीर करि विश्राम॥

प्रथम श्रीसेवक पद सिर नाऊँ।
करहु कृपा श्रीदामोदर मोपै, श्रीहरिवंश-चरन-रति पाऊँ॥
गुन गंभीर व्यासनन्दनजू के, तुव परसाद सुजस-रस गाऊँ।
नागरीदास के तुमहि सहायक, रसिक अनन्य नृपति मन भाऊँ॥

प्रात समय नव कुंज द्वार पै, ललिताजू ललित बजाई वीना।
पौढ़े सुनत श्याम श्रीश्यामा, दम्पति चतुर प्रवीन प्रवीना॥
अति अनुराग सुहाग परस्पर, कोक-कला गुन निपुन नवीना।

श्रीबिहारिनिदास बलि-अलि बंदिस पर,
मुदित प्रान न्यौछावर कीना॥

अबहि नैंक सोये हैं अलसाय।
काम-केलि अनुराग रस भरे, जागे हैं रैंन बिहाय॥
बार-बार सपनेहुँ में सूचत, सुरत रंग के भाय।
यह सुख निरखि सखीजन प्रमुदित, नागरीदासि बलि जाय॥

भोर भयैं सहचरि सब आईं। यह सुख देखत करत बधाई॥
कोउ वीना सारंगी बजावै। कोउ इक राग विभासहिं गावै॥
एक चरन हित सौं सहरावै। एक वचन परिहास सुनावै॥
उठि बैठे दोउ लाल रँगीले। बिथुरी अलक सबै अँग ढीले॥
घूमत अरुन नयन अनियारे। भूषन-वसन न जात सम्हारे॥
कहुँ अंजन कहुँ पीक रही फबि। कैसैं कही जात है सो छबि॥
हार बार मिलिकैं अरुझाने। निशि के चिन्ह निरखि मुसिकाने॥

निरखि-निरखि निशि के चिन्हनि, रोमांचित ह्वै जाहिं।
मानौं अंकुर मैंन के, फिरि निपजे तन माहिं॥

जागौ मोहन प्यारी श्रीराधा।
ठाढीं सखी दरस के काजैं, दीजै कुँवरि जु होय न बाधा॥
हँसत-हँसत दोउ उठे हैं जुगलवर, मरगजे बागे फबि रहे दोउ तन।
वारत तन-मन लेत बलैया, निरखि-निरखि फूलत मन ही मन॥
रंग भरे आनन्द जम्हावत, अंस-अंस धरि बाहु रहे गसि।
जैश्रीकमलनैंन हित या छबि ऊपर, वारौं कोटिक भानु मधुर ससि॥

मंगला भोग–

मंगल भोग अधिक रुचिकारी।
माखन मिश्री मोदक मेवा, सखियन आनि धरी भरि थारी॥
आलस वलित नैंन झपकौहैं, सोहैं करत लजत सुकुमारी।
पिय निहोरि मुख देत ग्रास पुनि, खात खवावत करत हहारी॥
गीत निर्त अरु वाद्य करन हित, सब सखि आनि भईं इकठाँ री।
ललिता ललित देत मुख बीरी, जैश्रीकमलनैंन छबि पर बलिहारी॥

मंगल आरती–

निरखि आरती मंगल भोर । मंगल श्यामा श्याम किशोर॥
मंगल श्रीवृन्दावन धाम । मंगल कुंज महल अभिराम॥
मंगल घंटा नाद सु होत । मंगल थार मणिनु की जोत॥
मंगल दुंदुभि धुनि छबि छाई । मंगल सहचरि दरसन आई॥
मंगल वीन मृदंग बजावैं । मंगल ताल झाँझ झर लावैं॥
मंगल सखी यूथ कर जोरैं । मंगल चँवर लियैं चहुँ ओरैं॥
मंगल पुष्पावलि वरषाई । मंगल जोति सकल वन छाई॥
जैश्री रूपलाल हित हृदय प्रकास । मंगल अद्भुत जुगल विलास॥

प्रातःकालीन वनविहार–

प्यारी रस नैंननि छकनि भरी।
प्रीतम कौ मन वश करि जानत, इनकौं बानि परी॥
वेपरवाही अति गरवीले, खंजन गति निदरी।
वृन्दावन हित रूप रसिक सौं, राखत अराअरी॥

आवत लाल प्रिया भुज जोरैं।
डगमगात आरस रस भीने, अति सुरंग नैंननि की कोरैं॥

चितवनि सहज चारु अति चंचल, मुसिकन मन्द मिथुन चित चोरैं।
हित ध्रुव निरखि रसिक ललितादिक, डारति वारि प्रान त्रृन तोरैं॥

शृंगार समय–

स्नान कुंज में दोऊ आये। रतन जटित जहँ हौज सुहाये॥
जल सुगन्ध तिनमें अति सोहैं। खिले कमल जिनमें मन मोहैं॥
तिन पर भ्रमर करत गुंजार। फूली फूल रहीं द्रुम डार॥

दोउ कुंज सुख-पुंज हैं, तिनकौ एक ही घाट।
स्नान करत जहाँ जुगलवर, तहाँ अलिनु के ठाट॥

अधर अरुन तेरे कैसैं कैं दुराऊँ।
रवि-शशि-शंक भजन किय अपु बस, अद्भुत रंगनि कुसुम बनाऊँ॥
शुभ कौसेय कसिव कौस्तुभ मणि, पंकज-सुतनि लै अँगनि लुपाऊँ।
हरषित इंदु तजत जैसैं जलधर, सो भ्रम ढूँढि कहाँ हौं पाऊँ॥
अंबुनि-दंभ कछू नहिं व्यापत, हिमकर तपै ताहि कैसैं कैं बुझाऊँ।
जैश्रीहित हरिवंश रसिक नव रँग पिय, भृकुटी भौंह तेरे खंजन लराऊँ॥

मज्जन करि बैठी चौकी पर, हित निजु कर सिंगार बनावत।
कारी सारी हरी कंचुकी, अतरौटा पियरौ पहिरावत॥
लाल लाल चीरा उपरैंना, पटुका-झँगा जु सूथन भावत।
बहु भूषन पहिराय तिलक दै, हित ब्रजलाल सु भोग लगावत॥

करि सिंगार राजत रँग भीने, रीझि लाड़िली-लाल जिमावत।
कौर-कौर प्रति छबि अवलोकत, बलि-बलि जूठन आपुन पावत॥
ललितादिक लीने कर चौंरनि, निरखि-निरखि नैंननि जु सिरावत।
जैश्रीहितहरिलाल निकट अलि रूपहि, पानदान लै पान खवावत॥

धूप आरती–

आजु नीकी बनी श्रीराधिका नागरी।
ब्रजजुवति-जूथ में रूप अरु चतुरई,
शील-सिंगार-गुन सबनि तें आगरी॥
कमल दच्छिन भुजा, वाम भुज अंश सखि,
गावती सरस मिलि मधुर सुर राग री।
सकल विद्या विदित, रहसि हरिवंश हित,
मिलत नव कुंज वर श्याम बड़ भाग री॥

आजु नागरी-किशोर, भाँवती विचित्र जोर,
कहा कहौं अंग-अंग परम माधुरी।
करत केलि कंठ मेलि, बाहु दंड गंड-गंड,
परस सरस रास-लास मंडली जुरी॥
श्याम-सुंदरी-बिहार, बाँसुरी मृदंग तार,
मधुर घोष नूपुरादि किंकिनी चुरी।
जै श्री देखत हरिवंश आलि निर्त्तनी सुधंग चालि,
वारि फेर देत प्रान देह सौं दुरी॥

शृंगार आरती–

बनी श्रीराधा-मोहनजू की जोरी।
इंद्र नीलमणि श्याम मनोहर, सातकुंभ तन गोरी॥
भाल विशाल तिलक हरि कामिनि, चिकुर चंद्र बिच रोरी।
गज-नाइक प्रभु चाल गयंदनि, गति वृषभानुकिशोरी॥
नील निचोल जुवति मोहन पट, पीत अरुण सिर खोरी।
जै श्री हित हरिवंश रसिक राधापति, सुरत रंग में बोरी॥

बेसर कौंन की अति नीकी।
होड़ परी लालन अरु ललना, चौंप बढ़ी अति जी की॥
न्याव परयौ ललिताजू के आगैं, कौंन ललित कौंन फीकी।
जैश्रीदामोदर हित विलग न मानौ, झुकनि झुकी प्यारीजू की॥

स्तुति : श्रीयुगल ध्यान–

श्रीप्रिया-वदन छबि-चन्द्र मनौं, प्रीतम-नैंन-चकोर।
प्रेम-सुधा-रस-माधुरी, पान करत निसि-भोर॥१॥
अंगनि की छबि कहा कहौं, मन में रहत विचार।
भूषन भये भूषननि कौं, अति स्वरूप सुकुमार॥२॥
सुरँग माँग मोतिनु सहित, सीसफूल सुख-मूल।
मोर चन्द्रिका मोहिनी, देखत भूली भूल॥३॥
श्याम-लाल बैंदी बनी, सोभा बढ़ी अपार।
प्रगट विराजत ससिनु पर, मनौं अनुराग-सिंगार॥४॥
कुंडल कल ताटंक चल, रहे अधिक झलकाइ।
मनौं छबि के ससि-भानु जुग, छबि-कमलनि मिले आइ॥५॥
नासा बेसर नथ बनी, सोहत चंचल नैंन।
देखत भाँति सुहावनी, मोहे कोटिक मैंन॥६॥
सुन्दर चिबुक कपोल मृदु, अधर सुरंग सुदेश।
मुसिकनि बरसत फूल सुख, कहि न सकत छबि लेश॥७॥
अंगनि भूषन झलकि रहे, अरु अंजन रँग पान।
नवसत-सरवर तें मनौं, निकसे करि स्नान॥८॥
कहि न सकत अंगनि-प्रभा, कुंज भवन रह्यौ छाय।
मानौं बागे रूप के, पहिरे दुहुँनि बनाय॥९॥
रतनांगद पहुँची बनी, वलया-वलय सुढार।
अँगुरिनु मुँदरी फबि रही, अरु मँहदी रँग सार॥१०॥

चन्द्र हार मुक्तावली, राजत दुलरी पोत।
पान पदिक उर जगमगै, प्रतिबिम्बित अँग जोति॥११॥
मणिमय किंकिनि-जाल छबि, कहौं जोइ सोइ थोर।
मनौं रूप-दीपावली, झलमलात चहुँ ओर॥१२॥
जेहरि सुमिलि अनूप बनी, नूपुर अनवट चारु।
और छाँड़िकैं या छबिहिं, हिय के नैंन निहारु॥१३॥
बिछुवनि की छबि कहा कहौं, उपजत रव रुचि दैंन।
मनौं सावक कल हंस के, बोलत अति मृदु बैंन॥१४॥
नख-पल्लव सुठि सोहने, सोभा बढ़ी सुभाय।
मानौं छबि-चन्द्रावली, कंज-दलनि लगी आय॥१५॥
गौर वरन साँवल चरन, रचि मँहदी के रंग।
तिन तरुवनि तर लुठत रहैं, रति-जुत कोटि अनंग॥१६॥
अति सुकुमारी लाड़िली, पिय किशोर सुकुमार।
इकछत प्रेम छके रहैं, अद्‌भुत प्रेम विहार॥१७॥
अनुपम श्यामल-गौर-छबि, सदा बसहु मम चित्त।
जैसैं घन अरु दामिनी, एक संग रहैं नित्त॥१८॥
वरने दोहा अष्ट दस, जुगल ध्यान रस-खानि।
जो चाहत विश्राम ध्रुव, यह छबि उर में आनि॥१९॥
पलकनि कैं जैसैं अधिक, पुतरिन सौं अति प्यार।
ऐसैंहिं लाड़िली-लाल के, छिन-छिन चरन सँभार॥२०॥

बनी वृषभानुनंदिनी आजु।
भूषन-वसन विविध पहिरैं तन, पिय मोंहन हित साजु॥
हाव-भाव लावण्य भृकुटि लट, हरत जुवतिजन पाजु।
ताल भेद अवघर सुर सूचत, नूपुर-किंकिणि बाजु॥

नव निकुंज अभिराम श्याम सँग, नीकौ बन्यौ समाजु।
जै श्रीहित हरिवंश विलास रास जुत, जोरी अविचल राजु॥

राजभोग समय–

आये भोजन कुंज किशोर री।
कर वर ध्वाय धरे मणि पट्टा, वैठे एकै जोर री॥
कटि पटुका मुद्रिका उतारी, करि-करि अधिक निहोर री।
वृन्दावन हित रूप परोसति, विंजन रचे न थोर री॥

मिलि जेंवत लाड़िली-लाल दोऊ, षट विंजन चारु सबै सरसैं।
मन में रस की रुचि जो उपजै, सखी माधुरी कुंज सबै हरसैं॥
हटकैं मनमोहन हारि रह्यौ भटू हाथ जिमावन कौं तरसैं।
बीचहिं कर कंपित छूटि परयौ, कबहूँ मुख ग्रास लियैं परसैं॥
दृग सौं दृग जोरि दोऊ मुसिकाय, भरे अनुराग सुधा बरसैं।
मनुहार विहार आहार करैं, तन में मन प्रान परे करसैं॥
सखी सौंज लियैं चहुँ ओर खरीं, हरषैं निरखैं परसैं दरसैं।
सुख-सिन्धु अपार कह्यौ न परै, अवशेष सखी हरिवंश लसैं॥

सजनी समुझि दुहुँनि के मन की, जमुनोदिक अचवावै हो।
खरिका दैकैं करन ध्वाय कैं, पुनि वीरी रचि लावै हो॥
पद-पाँवरी जटित मणि आगैं, राखि पौंछि पहिरावै हो।
वृन्दावन हित रूप रतन-सिंहासन तहाँ वैठावै हो॥

राजभोग आरती–

नवल घनश्याम नवल वर राधिका,
नवल नव कुंज नव केलि ठानी।
नवल कुसुमावली नवल सज्या रची,
नवल कोकिल-कीर-भृंग गानी॥

नवल सहचरी वृन्द नवल वीना मृदंग,
नवल सुर तान नव राग वानी।
जैश्री नवल गोपीनाथ हित नवल रसरीति सौं,
नवल हरिवंश अनुराग दानी॥

राजभोग की शयन–

कियौ गवन सैंन भवन प्रान प्यारी प्रान रवन,
रचत चोंज रस मनोज पौढ़े सचु पाई।
मणिनु कौ प्रकाश जहाँ सौरभ उद्गार तहाँ,
पान-डबा झारी जल धरी तहाँ जाई॥
नेह-भरी गुननि-भरी दंपति-सुख लार ढरी,
मृदुल करन चाँपि चरन बाहरि सखि आई।
बलि-बलि वृन्दावन हित रूप जुगल रसिक भूप,
तिनकी रस-केलि हियैं संपति सचि लाई॥

उत्थापन समय–

जाहि री तू मन्दिर माँहिं दरे री।
जुगल जगाइ रह्यौ दिन थोरौ, मानि वीनती मेरी॥
दंपति-अंग-सिंगारनि सामा, मैं रचि धरी घनेरी।
गौर-श्याम कौ मुख देखैं बिनु, सबै अरवरत एरी॥
यह सुनि सखी अलंकृत ह्वैकैं, सैंन भवन गई नेरी।
बीन अंक लै गावत बलि-बलि, उठहु नींद दै डेरी॥
वन-कौतिक-लोभी सुनि जागे, बातनि रंग ढरे री।
वृन्दावन हित रूप आइ जल, मज्जन वदन करे री॥

दुहुँनि तन सखिनु सिंगार किये हैं।
अंजन दै पुनि तिलक भाल रचि, दर्पन करनि दिये हैं॥

धूप दीप करि चरचि सुगंधिनु, घृत पक भोग धरे हैं।
मेवा मधुर मिष्ट फल नाना, जैंवत स्वाद ढरे हैं॥
सबके नाम बतावति सजनी, जैंवत करति बड़ाई।
धनि-धनि चंपकलता हेत उर, अधिक भरी चतुराई॥
तुष्ट-पुष्ट भये ग्रासनि लै पुनि, जमुनोदिक अँचवावै।
वृन्दावन हित रूप अनुरागिनि, रचि-रचि पान खवावै॥

संध्या समय धूप आरती–

श्रीराधा मेरैं प्राननि हूँ तें प्यारी।
भुलैंहुँ मान न कीजै सुन्दरि, हौं तौ सरन तिहारी॥
नैंक चितै हँसि बोलिये मोसौं, खोलियैं घूँघट सारी।
जैश्रीकृष्णदास हित प्रीति-रीति बस, भरि लीने अँकवारी॥

प्रीतम मेरे प्राननि हूँ तें प्यारौ।
निशि-दिन उर लगाय रहौं हित सौं, नैंक न करिहौं न्यारौ॥
देखत जाहि परम सुख उपजत, रूप रंग गुन गारौ।
जैश्रीकमलनैंन हित सुनि प्रिय बैंननि, तन-मन-धन सब वारौ॥

प्रीतम तुम मेरे दृगनि बसत हौ।
कहा भोरे ह्वै पूछत हौ, कै चतुराई करि जु हँसत हौ॥
लीजियैं परखि स्वरूप आपुनौ, पुतरिनु में प्यारे तुमहि लसत हौ।
वृन्दावन हित रूप बलि गई, कुंज लड़ावत हिय हुलसत हौ॥

ऐसी करौ नव लाल रँगीले जू, चित्त न और कहूँ ललचाई।
जे सुख-दुक्ख रहे लगि देह सौं, ते मिटि जाहिं अरु लोक-बड़ाई॥
संगति साधु वृन्दावन कानन, तव गुन-गाननि माँझ बिहाई।
छबि-कंज चरन्न तिहारे बसौ उर, देहु यहै ध्रुव कौं ध्रुवताई॥

शोभित आज रँगीली जोरी।
सुन्दर रसिक नवल मन मोहन, अलबेली नव वैस किशोरी॥
बेसर उभय हँसनि में डोलत, सो छबि लेत प्रान चित चोरी।
हित ध्रुव फँदी मीन यह अँखियाँ, निरखत रूप प्रेम की डोरी॥

सहज सुभाव पर्‌यौ नवल किशोरीजू कौ,
मृदुता-दयालुता-कृपालुता की रासि हैं।
नैंक हूँ न रिस कहूँ भूलि हू न होत सखि,
रहत प्रसन्न सदा हियैं मुख हासि हैं॥
ऐसी सुकुमारी प्यारेलालजू की प्रानप्यारी,
धन्य-धन्य धन्य तेई जिनके उपासि हैं।
हित ध्रुव और सुख देखियत जहाँ लगि,
सुनियत तहाँ लगि सबै दुख-पासि हैं॥

किशोरी तेरे चरननि की रज पाऊँ।
बैठी रहौं कुंजनि के कौनें, श्याम-राधिका गाऊँ॥
जो रज शिव-सनकादिक दुर्लभ, सो रज सीस चढ़ाऊँ।
व्यास स्वामिनी की छबि निरखत, विमल-विमल जस गाऊँ॥

किशोरी मोहि अपनी करि लीजै।
और दियैं कछु भावत नाहीं, वृन्दावन-रज दीजै॥
खग-मृग पशु-पंछी या वन के, चरन-सरन रखि लीजै।
व्यास स्वामिनी की छबि निरखत, महल टहलनी कीजै॥

परम धन राधा नाम अधार।
जाहि श्याम मुरली में गावत, सुमिरत बारम्बार॥

वेद-शास्त्र अरु जन्त्र-मन्त्र में, यही कियौ निरधार।
सहचरि रूप धरयौ नँदनन्दन, तऊ न पायौ पार॥
श्रीशुक प्रगट कियौ नहिं यातें, जानि सार कौ सार।
व्यासदास अब प्रगट वखानत, डारि भार में भार॥

ऐसौ कब करिहौ मन मेरौ।
कर करुवा कामरि काँधे पै, कुंजनि माँहिं बसेरौ॥
ब्रजवासिन के टूक रूख में, घर-घर छाछ महेरौ।
भूख लगै तब माँग खाउँगौ, गनौं न साँझ सबेरौ॥
रास-विलास वृत्ति करि पाऊँ, मेरे खूँट न खेरौ।
व्यासदास श्रीवृन्दावन में, रसिकजननि कौ चेरौ॥

संध्या समय भोग–

नमो-नमो जय श्रीहरिवंश।
रसिक अनन्य वैंनु कुल मंडन, लीला मानसरोवर हंस॥
नमो जयति वृन्दावन सहज माधुरी, रास-विलास प्रसंश।
आगम-निगम-अगोचर श्रीराधे, चरन-सरोज व्यास अवतंश॥

श्रीहरिवंश सरन जे आये।
श्रीवृषभानुकुँवरि-नँदनन्दन, निजु कर अपनी चिठी चढ़ाये॥
दियैं मुकराय कछू नहिं गोये, कियैं मनोरथ मन के भाये।
श्रीव्याससुवन-चरननि-रज परसत, नागरिदास से रंक जिवाये॥

जिनकैं श्रीहरिवंश सहायक।
तेई सजन भजन अधिकारी, वृन्दावन घन बसिवे लायक॥
अलकलड़े आनँद भरे डोलैं, सिर पर व्याससुवन सुखदायक।
कुँवरि-कुँवर ताहि सुलभ नागरीदास, रसिक सिरोमणि कें गुन गायक॥

(माई) मेरे बल श्रीवृन्दावनरानी।
जाहि निरन्तर सेवत मोंहन, वन विनोद सुखदानी॥
जिनकी चरन-कृपा तें पाई, कुंज केलि रस सानी।
जयश्रीरूपलाल हित हाथ बिकानी, निधि पाई मनमानी॥

रहौ कोउ काहू मनहिं दियैं।
मेरे प्राणनाथ श्रीश्यामा, शपथ करौं तृण छियैं॥
जे अवतार कदम्ब भजत हैं, धरि दृढ़ व्रत जु हियैं।
तेऊ उमगि तजत मर्यादा, वन बिहार रस पियैं॥
खोये रतन फिरत जे घर-घर, कौंन काज अस जियैं।
जैश्रीहित हरिवंश अनत सचु नाहीं, बिनु या रजहिं लियैं॥

हरि हम कब ह्वै हैं ब्रजवासी।
ठाकुर नन्दकिशोर हमारे, ठकुराइन राधा सी॥
सखी सहेली नीकी मिलिहैं, (श्री) हरिवंशी-हरिदासी।
वंशीवट की शीतल छाया, सुभग बहै यमुना सी॥
जा वैभव की करत लालसा, कर मीड़त कमला सी।
इतनी आस व्यास की पुजवौ, वृन्दाविपिन-विलासी॥

अब मैं (श्री) वृन्दावन धन पायौ।
राधे जू चरन सरन मन दीनौं, श्रीहरिवंश बतायौ॥
सोयौ हुतौ विषय-मन्दिर में, हित गुरु टेरि जगायौ।
अब तौ व्यास विहार विलोकत, शुक-नारद मुनि गायौ॥

प्यारी लागै (श्री) वृन्दावन की धूरि।
राधेजू रानी मोंहन राजा, राज सदा भरिपूरि॥

कनक-कलश करुवा महमूँदी, खासा ब्रज-कमरिनु की चूरि।
व्यासहि श्रीहरिवंश बताई, अपनी जीवनमूरि॥

आय विराजे महल में, संध्या समयौ जान।
आली ल्याईं भोग सब, मेवा अरु पकवान॥

संध्या भोग अली लै आईं।
पेड़ा-खुरमा और जलेबी, लडुआ-खजला और इमरती,
मोदक मगद मलाई॥
कंचन-थार धरे भरि आगैं, पिस्ता अरु बादाम रलाई।
खात-खवावत लेत परस्पर, हँसनि दसन-चमकनि अधिकाई॥

अद्भुत मीठे मधुर फल, ल्याईं सखी बनाय।
खवावत प्यारेलाल कौं, पहिलैं प्रियहिं पवाय॥

पानि परसि मुख देत बीरी पिय, तब प्यारी नैंननि में मुसिकाई।
ललितादिक जैश्रीकमलनयन हित, धनि दिन मानत आपनौं माई॥

पाग बनी पटुका बन्यौ, बन्यौ लाल कौ वेष।
श्रीराधाबल्लभलाल की, दौरि आरती देख॥

नाम ध्वनि–

जय-जय राधाबल्लभ गुरु हरिवंश।
रँगीलौ राधाबल्लभ हित हरिवंश॥
छबीलौ राधाबल्लभ प्यारौ हरिवंश।
रसीलौ राधाबल्लभ जीवन हरिवंश॥
जय हरिवंश जय-जय-जय हरिवंश।
जय-जय-जय हरिवंश, राधे-राधे॥

जय-जय राधाबल्लभ श्रीहरिवंश।
जय-जय श्रीसेवक रसिकनि अवतंश॥
जय-जय राधाबल्लभ श्रीहरिवंश।
जय-जय श्रीवृन्दावन श्रीवनचंद॥

संध्या आरती–

आरति कीजै श्यामसुन्दर की।
नन्द के नंदन राधिकावर की॥
भक्ति करि दीप प्रेम करि बाती।
साधु संगति करि अनुदिन राती॥
आरति ब्रजयुवति जूथ मन भावै।
श्यामलीला श्रीहरिवंश हित गावै॥
आरति राधाबल्लभलाल की कीजै।
निरखि नयन छबि लाहौ लीजै॥
सखि चहुँओर चँवर कर लीयैं।
अनुरागन सौं भीने हीयैं॥
सनमुख बीन मृदंग बजावैं।
सहचरि नाना राग सुनावैं॥
कंचन-थार जटित मणि सोहै।
मध्य वर्तिका त्रिभुवन मोहै॥
घंटा-नाद कह्यौ नहिं जाई।
आनँद मंगल की निधि माई॥
जयति-जयति यह जोरी सुखरासी।
जयश्रीरूपलाल हित चरन निवासी॥
आरति राधाबल्लभलालजू की कीजै।
निरखि नयन छबि लाहौ लीजै॥

स्तुति –

चन्द्र मिटै दिनकर मिटै, मिटै त्रिगुन विस्तार।
दृढ़ व्रत श्रीहरिवंश कौ, मिटै न नित्य विहार॥
जोरी जुगलकिशोर की, और रची विधि वादि।
दृढ़ व्रत श्रीहरिवंश कौ, निवह्यौ आदि जुगादि॥
निगम-ब्रह्म परसत नहीं, जो रस सबतें दूरि।
कियौ प्रगट हरिवंशजू, रसिकनि जीवनि मूरि॥
रूप-बेलि प्यारी बनी, प्रीतम प्रेम-तमाल।
दोउ मन मिलि एकै भये, श्रीराधाबल्लभलाल॥
निकसि कुंज ठाढ़े भये, भुजा परस्पर अंश।
श्रीराधाबल्लभ-मुख-कमल, निरखि नयन हरिवंश॥
रे मन! श्रीहरिवंश भजि, जो चाहत विश्राम।
जिहिं रस-बस ब्रज ब्रजसुन्दरिनु, छाँड़ि दिये सुख धाम॥
निगम नीर मिलि एक भयौ, भजन दुग्ध सम स्वेत।
श्रीहरिवंश-हंस न्यारौ कियौ, प्रगट जगत कें हेत॥

श्रीराधाबल्लभ लाड़िली, अति उदार सुकुमारि।
ध्रुव तौ भूल्यौ ओर तें, तुम जिन देहु बिसारि॥
तुम जिन देहु बिसारि, ठौर मोकौं कहुँ नाहीं।
प्रिय रँग भरी कटाक्ष, नैंक चितवहु मो माँहीं॥
बढ़ै प्रीति की रीति, बीच कछु होय न बाधा।
तुम हौ परम प्रवीन, प्राणबल्लभ श्रीराधा॥

बिसरिहौं न बिसारिहौ, यही दान मोहिं देहु।
श्रीहरिवंश के लाड़िले, मोहिं अपनी करि लेहु॥

कैसैंहु पापी क्यौं न होइ, श्रीहरिवंश नाम जो लेइ।
अलक लड़ैती रीझिकैं, महल खवासी देइ॥
महिमा तेरी कहा कहूँ, श्रीहरिवंश दयाल।
तेरे द्वारैं बँटत हैं, सहज लाड़िली-लाल॥
सब अधमनि कौ भूप हौं, नाहिंन कछु समुझन्त।
अधम-उधारन व्यास-सुत, यह सुनिकैं हर्षन्त॥
बन्दौं श्रीहरिवंश के, चरन-कमल सुख-धाम।
जिनकौं वन्दत नित्य ही, छैल छबीलौ श्याम॥
श्रीहरिवंश स्वरूप कौं, मन-वच करौं प्रणाम।
सदा सनातन पाइयैं, श्रीवृन्दावन धाम॥
जोरी श्रीहरिवंश की, श्रीहरिवंश स्वरूप।
सेवकवाणी-कुंज में, बिहरत परम अनूप॥
करुणानिधि अरु कृपानिधि, श्रीहरिवंश उदार।
वृन्दावन रस कहन कौं, प्रगट धर्‌यौ अवतार॥
हित की यहाँ उपासना, हित के हैं हम दास।
हित विशेष राखत रहौं, चित नित हित की आस॥
हरिवंशी हरि-अधर चढ़ि, गुंजत सदा अमन्द।
दृग-चकोर प्यासे सदा, प्याय सुधा मकरन्द॥
श्रीहरिवंशहि गाय मन, भावै जस हरिवंश।
हरिवंश बिना न निकासिहौं, पद निवास श्रीहरिवंश॥

दीजौ श्रीवृन्दावन वास, निरखूँ श्रीराधाबल्लभलाल कौं।
लड़ैती-लाल कौं॥
यह जोरी मेरे जीवनप्राण, निरखूँ श्रीराधाबल्लभलाल कौं।
लड़ैती-लाल कौं॥

मोर मुकुट पीताम्बर, एजी पीताम्बर, उर बैजन्ती माल।
हाँजी सोहै गल फूलनि की माल॥ निरखूँ.॥ लड़ैती.॥
जमुना पुलिन वंशीवट, एजी वंशीवट, सेवाकुंज निज धाम॥
हाँजी मंडल सेवा सुख धाम, हाँजी मानसरोवर बादग्राम॥ निरखूँ.॥
वंशी बजावै प्यारौ मोहना, बजावै प्यारौ मोहना,
लै-लै राधा-राधा नाम, हाँजी लै-लै श्यामा-श्यामा नाम,
हाँजी लै-लै प्यारी-प्यारी नाम॥निरखूँ.॥ लड़ैती.॥
देखौ या ब्रज की रचना, श्रीवृन्दावन की रचना,
नाचैं जुगलकिशोर, हाँजी नाचैं नवल किशोर॥निरखूँ.॥ लड़ैती.॥
चन्द्रसखी कौ प्यारौ, श्रीराधाजू कौ प्यारौ, सखियन कौ प्यारौ।
बिरज रखवारौ, श्रीहरिवंश दुलारौ॥
दरसन दीजौ दीनानाथ, हाँजी दर्शन दीजौ हित लाल ॥ निरखूँ.॥
यह जोरी मेरे जीवन प्रान, निरखूँ श्रीराधाबल्लभलाल कौं,
लड़ैंती-लाल कौं, दीजौ श्रीवृन्दावन वास॥ निरखूँ.॥ लड़ैती.॥

संध्या समय के प्रार्थना के श्लोक–

श्रीमद्धितहरिवंशचन्द्राचार्यमहाप्रभुजी कृत
श्रीराधासुधानिधि से उद्धृत–

प्रीतिं कामपि नाममात्र जनित प्रोद्दामरोमोद्गमा
राधा-माधवयोः सदैव भजतो कौमारएवोज्ज्वलाम्।
वृन्दारण्य नव प्रसूननिचयानानीय कुंजातरे।
गूढंशैशवखेलनैर्वत कदा कार्यो विवाहोत्सवः॥१॥

साभ्रूनर्तन चातुरी निरुपमा सा चारु नेत्रांचले
लीला खेलन चातुरी वरतनोः तादृग् वचश्चातुरी

संकेतागम चातुरी नव-नव क्रीड़ा कला चातुरी
राधाया जयतात्सखीजन परीहासोत्सवे चातुरी॥२॥

गौरांगे मृदिमास्मिते मधुरिमा नेत्रांचलेद्राधिमा,
वक्षोजे गरिमा तथैव तनिमा मध्ये गतौ मन्दिमा।
श्रोण्यां च प्रथिमा भ्रुवोः कुटिलमा विम्वाधरे शोणिमा
श्रीराधे हृदि ते रसेन जड़िमा ध्यानेऽस्तु मे गोचरः॥३॥

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति स्फुरतु मे राधा पदाब्जच्छटा
वैकुण्ठे नरकेथवा मम गतिर्नान्यस्तु राधां बिना।
राधा केलि कथा सुधाम्बुधि महा वीचीभिरान्दोलितं
कालिन्दी तट कुंज मन्दिरवरालिन्दे मनोविन्दतु॥४॥

यद् गोविन्द कथा सुधारस हृदे चेतोमया जृम्भितं
यद् वा तद्गुण कीर्तनार्चन विभूषाद्यैर्दिनं प्रापितम्।
यद्यत्प्रीति रकारि तत्प्रिय जनेष्वात्यन्तकी तेन मे
गोपेन्द्रात्मज जीवन प्रणयिनी श्रीराधिका तुष्यतु॥५॥

चन्द्रास्ये हरिणाक्षि देवि सुनसे श्रोणाधरे सुस्मिते,
चिल्लक्ष्मी भुजवल्लि कम्बु रुचिर ग्रीवे गिरींद्रस्तनि।
भञ्जन्मध्य वृहन्नितम्ब कदलीखण्डोरु पादाम्बुज
प्रोन्मीलन्नखचन्द्र मण्डलि कदा राधे मयाराध्यसे॥६॥

राधा पाद सरोज भक्तिमचलामुद्वीक्ष्य निष्कैतवां
प्रीतः स्वं भजतोपि निर्भर महा प्रेम्णाधिकं सर्वशः।
आलिंगत्यथ चुम्बति स्ववदनात्ताम्बूलमास्येर्पयेत्
कण्ठे स्वां वनमालिकामपि ममन्यस्येत्कदामोहनः॥७॥

राधानामसुधारसं रसयितुं जिह्वास्तुमे विह्वला
पादौ तत्पदकांकितासु चरतां वृन्दाटवी वीथिषु।
तत्कर्मैव करः करोतु हृदयं तस्याः पदं ध्यायता
त्तद्भावोत्सवतःपरं भवतु मे तत्प्राणनाथेरतिः॥८॥

वृन्दारण्य निकुंज सीमसुसदा स्वानंग रंगोत्सवै
र्माद्यत्यद्भुत माधवाधरसुधा माध्वीक संस्वादनैः
गोविन्दप्रिय वर्गदुर्गमसखी वृन्दैरनालक्षिता
दास्यं दास्यति मे कदानुकृपया वृन्दावनाधीश्वरी॥९॥

श्रीगोपेन्द्र कुमार मोहन महा विद्योस्फुरन्माधुरी
सारस्फार रसाम्बुराशि सहज प्रस्यन्दि नेत्रांचले।
कारुण्यार्द्र कटाक्ष भंगिमधुर स्मेराननाम्नाभोरुहे
हा हा स्वामिनि राधिके मयि कृपादृष्टिंमनांगनिक्षिपि॥१०॥

धर्माद्यर्थ चतुष्टयं विजयतां किं तद्वृथा वार्तया
सैकान्तेश्वर भक्तियोग पदवी त्वारोपिता मूर्द्धनि।
यो वृन्दावन सीम्नि कश्चनघनाश्चर्यः किशोरीमणिः
स्तत्कैंकर्य रसामृतादिह परं चित्ते न मे रोचते॥११॥

प्रेम्णः सन्मधुरोज्ज्वलस्य हृदयं श्रृंगार लीला कला
वैचित्री परमावधिर्भगवता पूज्यैव कापीशता।
ईशानी च शची महासुख तनुः शक्तिः स्वतन्त्रापरा
श्रीवृन्दावन नाथ पट्टमहिषी राधैव सेव्या मम॥१२॥

यज्जापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणा
द्यत्रं प्रेमवतां समस्त पुरुषार्थेषुस्फुरेतुच्छता।

यन्नामांकित मन्त्र जापनपरः प्रीत्यास्वयं माधवः
श्रीकृष्णोपि तद्दभुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम्॥१३॥

कालिन्दी तट कुंज मन्दिर गतो योगीन्द्र वद्यत्पद
ज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपतियां प्रेमाश्रुपूर्णोहरिः।
केनाप्यद्भुतमुल्लसद्रति रसानन्देन सम्मोहिता
सा राधेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्यापराद्वयक्षरा॥१४॥

देवानामथ भक्त मुक्त सुहृदामत्यन्त दूरं च यत्
प्रेमानन्द रसं महा सुखकरं चोच्चारितं प्रेमतः।
प्रेम्णा कर्णयते जपत्यथमुदा गायत्यथा लिष्वयं
जल्पत्यश्रुमुखो हरिस्तदमृतं राधेति मे जीवनम्॥१५॥

लक्ष्म्यायश्च न गोचरी भवति यन्नापुः सखायः प्रभोः
सम्भाव्योपि विरंचि नारद शिव स्वायम्भुवाद्यैर्न यः।
यो वृन्दावन नागरी पशुपतिस्त्रीभाव लभ्यः कथं
राधामाधवयोर्ममास्तु स रहोदास्याधिकारोत्सवः॥१६॥

मालाग्रन्थनशिक्षया मृदु-मृदु श्रीखण्ड निर्घर्षणा
देशेनाद्भुत मोदकादिविधिभिः कुंजान्त सम्मार्जनै।
वृन्दारण्य रहस्थलीषु विवशा प्रेमार्तिभारोद्गमात्
प्राणेशं परिचारिकैः खलु कदा दास्यामयाधीश्वरी॥१७॥

उच्छिष्टामृत भुक्तवैव चरितं श्रृण्वंस्तवैवस्मरन्
पादाम्भोज रजस्तवैव विचरन् कुंजांस्तवैवालयन्।
गायन्दिव्य गुणांस्तवैव रसदे पश्यं स्तवैवाकृतिं
श्रीराधे तनुवाङ्मनोभिरमिलैः सोहं तवैवाश्रितः॥१८॥

आशास्य दास्यं वृषभानुजायास्तीरे समध्यास्यचभानुजायाः।
कदानु वृन्दावन कुंजवीथीष्वहं नु राधेह्यतिथिर्भवेयम्॥१९॥

यत्र यत्र मम जन्म कर्मभिर्नारकेथ परमेपदेथवा।
राधिकारतिनिकुंजमण्डली तत्र तत्र हृदि मे विराजताम्॥२०॥

❀

श्रीहित हरिवंशाष्टक

यदीयं माधुर्यामृत निनदमास्वाद्य विवुधा,
दयोपिस्वं कार्यं विजहुरभितस्तब्धा मनसः।
करोति श्रीराधाधरमधुरविंवाधर सुधा,
समास्वादन्नित्यं सहित हरिवंशो विजयते॥१॥

विना यस्याधिष्ठा हरि युगल लीलोत्सव रसः,
क्षणं नो जायेत प्रिय सहचरी सौख्य जनकः।
विभूषांगो रत्नैरनुपमगणैः स्पर्श रसिको,
हरेर्पाणि स्पर्शात् सहित हरिवंशो विजयते॥२॥

मुकुन्द प्रेमाब्धौ विरचित निजांगे द्विजपतिः,
सुधाधारां राधाचरण प्रियतां साधु तरुषु।
प्रसिंचन्नान्दं जनयति जनानां निजतनुः,
प्रभान्तांतरध्वान्तः सहित हरिवंशो विजयते॥३॥

सखीनां राधायाः परम सुखदायी सुमधुर,
प्रियालापैर्लीला विहित बहुवेषी हितकृते।
जनानां दीनानां मृदुपम दशानां भवति यो,
धुरीणो धीराणां सहित हरिवंशो विजयते॥४॥

ध्वनिर्यस्याः स्वर्गं भुवनमपि संमोहयति यो,
यशो राशि विश्वं विशदयति सन्मानसमपि।
सुधाधारा स्पर्द्धी शशि किरण संवर्द्धित रुचिः,
पर प्रेमानन्दी सहित हरिवंशो विजयते॥५॥

सदायः श्रीवृन्दावन कुमुद वन्धोः प्रणयितां,
दधानः श्रीराधा गुणगरिम गीतं वितनुते।
सखी संगे रंगे ब्रज विपिन कुंजे विरहते,
सखी भावे नायं सहित हरिवंशो विजयते॥६॥

भवाब्धौमग्नानां किलतनुभृतां तारण कृते।
गृहीत्वापुंवेषं हरि युगल लीला व्यतनुते॥
सखी रूपोप्यंतर्गत परम कारुण्य निकरः,
सदानन्दामोदी सहित हरिवंशो विजयते॥७॥

पुरावंशीरूपस्तदनुहरि सौख्यात्सहचरी,
ततोऽपि श्रीराधाचरण कमल प्रेम मधुपः।
समास्वादे राधामृतनिधिमपि ग्रन्थमकरो,
दयालुर्दीनानां सहित हरिवंशो विजयते॥८॥

॥श्रीहित हरिवंशाष्टक सम्पूर्णम्॥

संध्या पश्चात् रास के पद–

आजु गोपाल रास रस खेलत, पुलिन कलपतरु तीर री सजनी।
शरद विमल नभ चंद विराजत, रोचक त्रिविधि समीर री सजनी॥
चंपक बकुल मालती मुकलित, मत्त मुदित पिक-कीर री सजनी।
देसी सुधंग राग-रँग नीकौ, ब्रजजुवतिनि की भीर री सजनी॥
मघवा मुदित निसान बजायौ, व्रत छाँड़्यौ मुनि धीर री सजनी।
जै श्रीहित हरिवंश मगन मन श्यामा, हरत मदन घन पीर री सजनी॥

पिय कौं नाँचत सिखवत प्यारी।
वृन्दावन महँ रास रच्यौ है, शरद चन्द उजियारी॥
ताल-मृदंग-उपंग बजावति, प्रफुलित ह्वै सखि सारी।
बीन-वैंनु-धुनि नूपुर ठुमकत, खग-मृग दसा बिसारी॥
मान गुमान लकुट लियैं ठाढ़ी, डरपत कुंजबिहारी।
व्यासस्वामिनी की छबि निरखत, हँसि-हँसि दै करतारी॥

उघटत ललना लाल नचावत।
अभिनय लाग डाट गति लीने, ललितादिक सुर सरस मिलावत॥
रीझि-रीझि मणि-भूषन बारत, हारत कोटि प्रान सचु पावत।
श्रमकन हेरि फेरि पीताम्बर पौंछि-पौंछि अलि नैंन सिरावत॥
वरषत सुमन मुदित मन सहचरि, जै जै जै वानी सरसावत।
जैश्रीलाल रूप हित रास रसिकवर, रस बस ह्वै उर उर हरषावत॥

शयन भोग–

लाड़िली-लाल राजत रुचिर कुंज में।
अरगजा अंग रँग-रंग बागे बने,
दोउ जन प्रेम सौं सने रस-पुंज में॥
निर्तत ठाढ़ी अलीं भलीं गति भेद सौं,
रैंन पहिलौ जाम एक अलि गुंज में।
परयौ परदा धरयौ सैंन कौ भोग,
पूरी भरि थार ब्रजलाल कर मंजु में॥

सैंन भोग ल्याईं भरि थारी।
रुचिर कचौरी पूआ पूरी, मोंहनभोग जैंवत पिय-प्यारी॥
धरे कटोरा भरे मुरब्बा, सरस सधाने वर तरकारी।
औट्यौ दूध रजत भाजन भरि, ता मधि पीस सिता बहु डारी॥

भोजन सैंन समय करवावत।
लुचई मोंहनभोग इमरती, मिश्री फैंनी दूध मिलावत।
दृग कोरनि मधि हँसत परस्पर, रद छद परसत ललन खवावत॥

राधा मोंहनलाल व्यारू कीजै।
पूरी दूध मलाई मिश्री, पहिलौ कौर प्रियाजू कौं दीजै।
जैंवत लाल-लड़ैती दोऊ, ललितादिक निरखत सुख भींजै॥

करत राधा-मोंहन व्यारू बैठे सदन मिलि सोहैं॥
इक थारी एकै जलझारी, एक वैस इक रूप उजारी।
मधु मेवा पकवान मिठाई, दंपति अति रुचिकारी॥
प्यारी कें कर पावत प्यारौ, प्यारे कें कर पावत प्यारी।
दूध सिराय लै आईं श्रीललिता, प्यारीजू पियौ लाल करै मनुहारी॥

हँसि-हँसि दूध पीवत बाल।
मधुर वर सौंधे सुवासित, रुचिर परम रसाल॥
भुव भंग रंग अनंग वितरत, चितै मोहन ओर।
सुधानिधि मनौं प्रेम धारा, पुषित त्रिषित चकोर॥
प्यारौलाल रस लंपट सुकर, अँचवाय मुख छबि हेर।
लेत तब अबशेष आपुन, परे मनमथ फेर॥

पिय पय धरयौ कनक-कटोर।
सुगन्ध एला मिल्यौ मिश्री, लेत देत निहोर॥
कबहुँ ये लैं कबहुँ वे लैं, कर कटाक्षनि कोर।
वदन-विधु निधि सुधा पीवत, सखिन-नैंन-चकोर॥

हँसि-हँसि दूध पिवत पिय प्यारी।
चन्दन वारि कनक चिरु औट्यौ, वारी कोटि सुधारी॥

मिश्री लोंग चिरौंजी एला, कपूर सुगन्ध सँवारी।
उज्ज्वल सरस सचिक्कन सुन्दर, स्वाद सु मिष्ट महारी॥

नवल नवेली अलबेली सुकुमारीजू कौ,
रूप पिय-प्राननि कौ सहज अहार री।
व्यंजन सु भाइन के नेह-घृत सौं जु बने,
रोचक रुचिर हैं अनूप अति चारु री॥
नैंननि की रसना तृपित न होत क्यौं हूँ,
नई-नई रुचि ध्रुव बढ़त अपार री।
पानिप कौ पानी प्याइ पान मुसिकानि ख्वाइ,
राखे उर-सेज स्वाइ पायौ सुख सार री॥

शयन आरती–

रस निधि सैंन आरती कीजै।
निरखि-निरखि छबि जीवन जीजै॥
मणि-नग जगमग जोति जगमगै।
दम्पति रूप प्रकाश रँगमगै॥
सहचरि चँवर मोरछल ढोरैं।
पुहुप वृष्टि अंजुलि चहुँ ओरैं॥
झाँझ ताल झालरि, दुन्दुभि-रव।
निर्त गान अलि हरति मनोभव॥
महा मोद धुनि मधुर मृदंगा।
जै-जै वानी मिलि इक संगा॥
यह सुख रसिक उपासिक गावैं।
जै श्रीरूपलाल हित चित दुलरावैं॥

शयन समय–

अब पौढ़नि कौ समय भयौ।
इत झुकि आईं द्रुमनि परछहियाँ, उत ढरि चन्द्र गयौ॥
उमगि मिले दोउ सुभग सेज पै, बाढ़्यौ रंग नयौ।
'रसिक बिहारी' पिय प्यारी मिलि पौढ़े, यह सुख दृगनि लयौ॥

लड़ैतीजू के नैंननि नींद घुरी।
आलस-बस जोवन-बस मद-बस, पिय के अंश ढुरी॥
पिय कर परस्यौ सहज चिवुक वर, बाँकी भौंह मुरी।
बाबरी सखी हित व्याससुवन-बल, देखत लतनि दुरी॥

आलस नैंन आवत घूमि।
खसित भुज पिय अंश तें, सम्हराय कर लै चूमि॥
लाल चुटकी दै जगावत, खुले ताकत भूमि।
वृन्दावन हित रूप घूँघट, वदन पर रह्यौ झूमि॥

देखौ चित्रसारी बनी।
मणिनु-दीपक रंध्र झलकैं, विविध शोभा सनी॥
अरस परस सुगंध की, उदगार आवत छनी।
मध्य सेज विराजि पौढ़े, रसिक दम्पति मनी॥
अंग रंग अनंग भीने, राधिका धन धनी।
पद कमल सेवत तहाँ, 'हितरूप' एकै जनी॥

पहुँचे सैंन सुख छबि ऐंन।
सखिन निर्मित नवल शैया, मृदुल कल पय-फैंन॥
जाइ जुगल तहाँ विराजे, सखिन सब सुख दैंन।
छबि बढ़ी दृग चढ़ी सबकैं, कहि न आवत बैंन॥
रैंन ज्यौं-ज्यौं घटत उतरत, बढ़त त्यौं-त्यौं मैंन।
हित किशोरी चैंन वरषत, पियहिं करत अचैंन॥

❁अष्टयाम सेवा के पद सम्पूर्ण❁

श्रीराधारानी की आरती (रासमण्डल और सेवाकुंज में गेय)

जै जै श्रीराधेजू मैं शरण तिहारी, प्यारी शरण तिहारी।
लोचन आरती जाऊँ बलिहारी।जै जै हो राधे॥
पाट पटम्बर ओढ़े नील सारी,
सीस के सैंदुर जाऊँ बलिहारी।जै जै हो राधे॥
रतन (फूल) सिंहासन बैठौ श्रीराधे,
आरति करैं हम पिय संग जोरी।जै जै हो राधे॥
झलमल झलमल मानिक मोती,
अवलख मुनि मोहे पिय संग जोरी।जै जै हो राधे॥
श्रीराधे पद पंकज भगति की आशा।
दास मनोहर करत भरोसा।जै जै हो राधे॥

॥इति श्रीराधारानी की आरती सम्पूर्ण॥

रसिक नाम ध्वनि

जै-जै राधाबल्लभ गुरु हरिवंश।
रँगीलौ राधाबल्लभ हित हरिवंश॥
छबीलौ राधाबल्लभ प्यारौ हरिवंश।
रसीलौ राधाबल्लभ जीवन हरिवंश॥
जै हरिवंश जै-जै हरिवंश जै-जै-जै हरिवंश।जै-जै-राधा....॥
श्रीवृन्दावन रानी राधा-बल्लभ नृपति प्रसंश।
हित के बस-जस-रस उर धरिये, करिये श्रुति अवतंश॥
वंशीवट जमुनातट धीरसमीर पुलिन सुख-पुंज।
बिहरत रंग रँगीले हित सौं, मण्डल-सेवाकुंज॥
ललित विशाखा चंपक चित्रा, तुँगविद्या रँगदेवी।
इँदुलेखा अरु सखी सुदेवी, सकल जूथ हित-सेवी॥

श्रीवनचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र, श्रीगोपीनाथ श्रीमोहन।
नाद-बिन्दु परिवार रँगीलौ, हित सौं नित छबि जोहन॥
नरवाहन ध्रुवदास व्यास, श्रीसेवक नागरीदास।
बीठल मोंहन नवल छबीले, हित-चरननि की आस॥
हरीदास नाहरमल गोविन्द, जैमल भुवन सुजान।
खरगसैंन हरिवंशदास, परमानँद के हित प्रान॥
गंगा जमुना कर्मठी अरु, भागमती ये बाई।
हितजू की चरन सरन ह्वै कैं इन, दम्पति-सम्पति पाई॥
दास चतुर्भुज कन्हर स्वामी, अरु प्रबोध कल्यान।
स्वामी लाल दामोदर पुहुकर, सुन्दर हित उर आन॥
हरीदास तुलाधार और यशवन्त महामति नागर।
रसिकदास हरेकृष्ण दोऊ ये, प्रेम भक्ति के सागर॥
मोंहन माधुरीदास द्वारिकादास परम अनुरागी।
श्यामशाह तूँवर कुल हित सौं, दम्पति में मति पागी॥
श्रीहित सरन भये अरु अब हैं, फेरहु जे जन ह्वै हैं।
प्रेम भक्ति अरु भाव चाव सौं, वृन्दावन-निधि पैहैं॥
रसिक-मण्डली में या तन कौं, नीके ढंग लगावौ।
दम्पति-जस गावौ हरषावौ, हित सौं रीझि रिझावौ॥
देवनि कौं दुर्लभ नर देही, सो तैं सहजहि पाई।
मनभाई निधि पाई सो क्यौं, जानिबूझि बिसराई॥
एक अहंता ममता ये हैं, जग में अति दुखदाई।
ये जब श्रीजू की ओर लगैं तब, होत परम सुखदाई॥
मात-तात-सुत-दार देह में, मति अरुझै मति मंदा।
श्रीहित किशोर कौ ह्वै चकोर तू, लखि 'वृन्दावन चन्दा'॥

गोस्वामी श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु प्रणीत

श्रीमद् यमुनाष्टक

(कलिन्दनन्दिनी अष्टक)

ब्रजभाषा टीकाकार—गोस्वामी श्रीहित चन्द्रलाल जी

ब्रजाधिराज-नन्दनाम्बुदाभ गात्र चंदना-
नुलेपगंधवाहिनीं भवाब्धिबीजदाहिनीम्।
जगत्त्रये यशस्वनीं लसत्सुधापयस्विनीं-
भजे कलिन्दनन्दिनीं दुरंतमोहभंजनीम्॥१॥

जो नवीन मेघ के समान कान्ति वाले ब्रजराज-नन्दन श्रीकृष्ण के शरीर में अनुलेपित चन्दन गंध का वहन करती हैं, जो आवागमन रूप भवसागर के बीज को जला देती हैं, जिनका सुयश तीनों लोक में विख्यात है, जिनका जल अमृत के समान उज्ज्वल है एवं जो दुरन्त मोह (जिसका अन्तिम परिणाम बड़ा कष्टमय है) को नष्ट करने वाली हैं, मैं उन कलिन्दनन्दिनी श्रीयमुनाजी का भजन करता हूँ।

टीका कवित्त–

ब्रजराज-नंदन कौ मेघश्याम गात तामें,
चंदन की खौर चित्र रचना रचावै है।
सोई अनुलेप अंगराग कौ प्रवाह बहै,
भव-सिन्धु बीज निःशेष कै जरावै है॥
तीन लोक माँझ जाके जस कौ वितान तन्यौ,
सुधा सम जल क्रीड़ा जुगल करावै है।
ता कलिन्दनन्दिनी कौं भजौं 'हित चन्द' जो,
दुरंत मोह भेदि वन-सम्पति लखावै है॥१॥

रसैकसीमराधिकापदाब्जभक्तिसाधिकां-
तदंगरागपिंजरप्रभातिपुंजमंजुलाम्।
स्वरोचिषातिशोभितां कृतां जनाधिगंजनां-
भजे कलिन्दनन्दिनीं दुरंतमोहभंजनीम्॥२॥

जो रस की एकमात्र सीमा श्रीराधिकाजी के चरण-कमल की भक्ति को प्राप्त कराने वाली हैं और उन्हीं श्रीराधिकाजी के अंग राग का वहन करने के कारण जो अत्यन्त मंजुल प्रकाश से युक्त हैं, जो स्वयं अपनी प्रभा से अत्यन्त शोभित हैं, जो अपने जनों के पूर्व-कृत पापों को समूल नष्ट करने में बहुत ही कुशल हैं एवं जो दुरन्त मोह को नष्ट करने वाली हैं, मैं उन कलिन्दनन्दिनी श्रीयमुनाजी का भजन करता हूँ।

टीका कवित्त–

रस की है एक सींव सदा राधाप्यारी, ताके-
चरनारविन्द की सुनि भक्ति कौं सधावै है।
प्रिया-अंगराग सौं विचित्रित प्रभा कौं धरैं,
अति मंजु पुंज छबि नव सरसावै है॥
अपनी सु कांति करि शोभित सरस रूप,
अंजन कौं भंजन करत छबि छवै है।
ता कलिन्दनन्दिनी कौं भजौं 'हित चन्द' जो,
दुरंत मोह भेदि वन-सम्पति लखावै है॥२॥

ब्रजेन्द्रसूनुराधिकाहृदिप्रपूर्यमाणयो-
र्महारसाब्धिपूरयोरिवातितीव्रवेगतः।
बहिः समुच्छलन्नवप्रवाहरूपिणीमहं-
भजे कलिन्दनन्दिनीं दुरंतमोहभंजनीम्॥३॥

श्रीनन्दनन्दन और श्रीराधिका के हृदय में पूर्ण रूप से भरा हुआ महा रस-सागर का उल्लास ही मानों तीव्र वेग से बाहर उछल

कर जिनका नित्य नवीन प्रवाह बन गया है, एवं जो दुरन्त मोह को नष्ट करने वाली हैं, मैं उन कलिन्दनन्दिनी श्रीयमुनाजी का भजन करता हूँ।

टीका कवित्त–

नित्य राधाबल्लभ कैं हिय माँझ पूरि रह्यौ,
महा रस-सागर सदा ही उमगावै है।
ताही कौ जो पूर वह सबनि कौं दूर, ताकौं-
अति तीव्र वेगि करि दृग दरसावै है॥
बाहिर कौं उछलि कैं नवल प्रवाह रूप,
अति ही अनूप परिकर कौं रिझावै है।
ता कलिन्दनन्दिनी कौं भजौं 'हित चन्द' जो,
दुरंत मोह भेदि वन-सम्पति लखावै है॥३॥

विचित्ररत्नबद्धसत्तटद्वयश्रियोज्ज्वलां-
विचित्रहंससारसाद्यनन्तपक्षिसंकुलाम्।
विचित्रमीनमेखलां कृतातिदीनपालितां-
भजे कलिन्दनन्दिनीं दुरंतमोहभंजनीम्॥४॥

जिनके दोनों तट उज्ज्वल कान्ति फैलाने वाले रत्नों से आबद्ध हैं तथा विचित्र प्रकार के हंस-सारसादिक पंक्षि-समूह से पूरिपूर्ण हैं, जल में बिहार करती हुई विचित्र-विचित्र मछलियाँ ही मानों जिनकी मेखला (करधनी) की शोभा को प्राप्त हो रही है, जो अधम से अधम दीनजनों का पालन करने वाली हैं एवं जो दुरन्त मोह को नष्ट करने वाली हैं, मैं उन कलिन्दनन्दिनी श्रीयमुनाजी का भजन करता हूँ।

टीका कवित्त–

रतन-जटित दोउ तटनि की शोभा अति,
उज्ज्वल सरस सो अनन्त छबि छवै है।

चित्र औ विचित्र हंस-सारस कौं आदि लै,
अनेक पंछी डोलैं तिन्हैं मोद उपजावै है॥
नाना भाँति मीन ते तौ करत कलोल जामें,
दीननि के पालनि कौं विरद बढ़ावै है।
ता कलिन्दनन्दिनी कौं भजौं 'हित चन्द' जो,
दुरंत मोह भेदि वन-सम्पति लखावै है॥४॥

वहंतिकां श्रियांहरेर्मुदा कृपास्वरूपिणीं-
विशुद्धभक्तिमुज्ज्वलां परेरसात्मिकां विदुः।
सुधाश्रुतित्वलौकिकीं परेशवर्णरूपिणीं-
भजे कलिन्दनन्दिनीं दुरंतमोहभंजनीम्॥५॥

जो श्रीहरि की श्याम कांति का मोद पूर्वक वहन करती हैं, जो साक्षात् कृपा स्वरूपिणी हैं, जो परम रसमयी उज्ज्वल एवं विशुद्ध भक्ति स्वरूपा हैं, जो अमृत की अलौकिक धारा स्वरूप हैं, जिनका वर्ण परम प्रभु श्रीकृष्ण के श्याम रंग के समान है एवं जो दुरन्त मोह को नष्ट करने वाली हैं, मैं उन कलिन्दनन्दिनी श्रीयमुनाजी का भजन करता हूँ।

टीका कवित्त–

हरिजू की शोभा ताकौं बहत सदा ही रहै,
अति ही कृपा स्वरूप कहत न आवै है।
भक्ति जो विशुद्ध सोइ उज्ज्वल महा है श्रेष्ठ,
रस ही की मूर्त्ति जानि हिय सुख पावै है॥
नित ही अलौकिक सुधा कौं श्रवै प्रेम द्रवै,
श्याम कौ वरन धरैं छबि दरसावै है।
ता कलिन्दनन्दिनी कौं भजौं 'हित चन्द' जो,
दुरंत मोह भेदि वन-सम्पति लखावै है॥५॥

सुरेन्द्रवृन्दवन्दितां रसादधिष्ठितेवने-
सदोपलब्धमाधवाद्भुतैकसदृशोन्मदाम्।
अतीव विह्वलामिवच्चलत्तरंगदोर्लतां-
भजे कलिन्दनन्दिनीं दुरंतमोहभंजनीम्॥६॥

जो सुरेन्द्रों के समूहों द्वारा वन्दित हैं, जो उन श्रीमाधव के समान रसोन्मत्त हैं, जिन्होंने रसभूमि श्रीवृन्दावन में किसी अद्भुत रस की प्राप्ति की है, जिनकी तरंग रूपी भुजायें प्रेम विह्वलता के कारण अत्यन्त चंचल बनी हुई हैं एवं जो दुरन्त मोह को नष्ट करने वाली हैं, मैं उन कलिन्दनन्दिनी श्रीयमुनाजी का भजन करता हूँ।

टीका कवित्त–

शिव-विधि-इन्द्र जाकौं वन्दन करत सदा,
सो तौ रस रूप धाम ही में सचु पावै है।
माधव सौं पायौ अद्भुत एक रस, तासौं-
सदा उन्मत्त रहै छकनि छकावै है॥
अतिशय विह्वल ह्वै उछलैं तरंग मानौं,
ऊँची भुज-लता करि मिलन कौं आवै है।
ता कलिन्दनन्दिनी कौं भजौं 'हित चन्द' जो,
दुरंत मोह भेदि वन-सम्पति लखावै है॥६॥

प्रफुल्लपंकजाननां लसन्नवोत्पलेक्षणां-
रथांगनामयुग्मकस्तनीमुदारहंसिकाम्।
नितंबचारुरोधसां हरेः प्रियां रसोज्ज्वलां-
भजे कलिन्दनन्दिनीं दुरंतमोहभंजनीम्॥७॥

श्रीयमुनाजी में खिले हुए लाल कमल ही मानों उनका मुख है और शोभाशाली नीलकमल ही उनके नेत्र हैं, चकवे की जोड़ी ही उनके स्तन हैं, जिनमें अनेक हंस क्रीड़ा कर रहे हैं, जिनके दोनों तट

ही उनके नितम्ब हैं, जो श्रीहरि की प्रिया श्रीराधा के रस से उज्ज्वल बनी हुई हैं एवं जो दुरन्त मोह को नष्ट करने वाली हैं, मैं उन कलिन्दनन्दिनी श्रीयमुनाजी का भजन करता हूँ।

टीका कवित्त–

प्रफुलित कंज सौ वदन मानौं शोभा देत,
उतपल नैंन सौं कटाक्ष बरसावै है।
चकवा औ चकवी यौं राजत हैं कुच दोउ,
हंस बोलैं सोई क्षुद्र घंटिका बजावै है॥
सुन्दर जो विवि तट तेई हैं नितंब, पिय-
प्यारी कौ उज्ज्वल रस-रूप दरसावै है।
ता कलिन्दनन्दिनी कौं भजौं 'हित चन्द' जो,
दुरंत मोह भेदि वन-सम्पति लखावै है॥७॥

समस्तवेदमस्तकैरगम्य वैभवां सदा-
महामुनीन्द्रनारदादिभिः सदैव भाविताम्।
अतुल्यपामरैरपि श्रितां पुमर्थशारदां-
भजे कलिन्दनन्दिनीं दुरंतमोहभंजनीम्॥८॥

जिनका वैभव समस्त उपनिषदों के लिए अगम्य है, नारदादिक महा मुनीन्द्र जिनका ध्यान करते हैं, आपका आश्रय लेने वाले सर्वश्रेष्ट पामरों को भी जो प्रेम प्रदान करती हैं एवं जो दुरन्त मोह को नष्ट करने वाली हैं, मैं उन कलिन्दनन्दिनी श्रीयमुनाजी का भजन करता हूँ।

टीका कवित्त–

शास्त्र औ पुरान वेद-उपनिषदादि जाके,
वैभव कौं गावैं, भेद अ में न आवै है।
महा जे मुनीन्द्र और नारदादि भक्त सदा,
हिय माँझ ध्यावत, पै मन न अघावै है॥

पामर अतुल्य जाकौ आश्रय करत मात्र,
सब पुरुषारथ के सार ही कौं पावै है।
ता कलिन्दनन्दिनी कौं भजौं 'हित चन्द' जो,
दुरंत मोह भेदि वन-सम्पति लखावै है॥८॥

य एतदष्टकं बुधस्त्रिकालमादृतः पठेत्-
कलिन्दनन्दिनीं हृदा विचिंत्य विश्ववंदिताम्।
इहैव राधिकापतेः पदाब्जभक्तिमुत्तमा-
मवाप्य स ध्रुवं भवेत्परत्र तत्प्रियानुगः॥९॥

जो विवेकीजन विश्ववन्दित श्रीयमुनाजी का हृदय में ध्यान करते हुए इस अष्टक का तीनों कालों में अर्थात् प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल आदरपूर्वक पाठ करेंगे, वे राधिकापति श्रीकृष्ण की प्रेमलक्षणा भक्ति को इसी लोक में प्राप्त करेंगे और शरीर त्याग के पश्चात् निश्चय ही सहचरि भाव से श्रीराधिका के अनुगत हो जायेंगे।

टीका कवित्त–

अष्टक पुनीत जो त्रिकाल याकौ पाठ करै,
अति आनन्द सौं विशुद्ध ह्वै कैं तन में।
विश्व जाहि वन्दै ता कलिन्दनन्दिनी कौ, हिय-
ध्यान धरै अधिक मुदित होइ मन में॥
याही लोक माँझ राधापति की पदाब्ज भक्ति,
उत्तम कौं पाय निश्चै बसै निज जन में।
फेरि पिय-प्यारी जू की अनुचरी होय 'चन्द',
हित जुत सुख लहै, रहै अलिगन में॥९॥

फलस्तुति दोहा–

जमुना-अष्टक जो पढ़ै, हित सौं नित चित लाय।
सो दंपति संपति लहै, वन में अलि तन पाय॥१॥
श्रीहित भाख्यौ मूल जो, ताकी टीका 'चन्द'।
प्रगट कियौ निजु जननि कौं, दंपति रस कौ कन्द॥२॥

॥ इति श्रीमद् यमुनाष्टक श्रीहितहरिवंश गोस्वामिना विरचित संपूर्णम् ॥

विवाहोत्सव

खेलत रास दुलहिनी-दूलहु।
सुनहु न सखी सहित ललितादिक, निरखि-निरखि नैंननि किन फूलहु॥
अति कल मधुर महा मोंहन धुनि, उपजत हंस-सुता कैं कूलहु।
थेइ-थेइ वचन मिथुन मुख निसरत, सुनि-सुनि देह दशा किन भूलहु॥
मृदु पदन्यास उठत कुमकुम रज, अद्भुत बहत समीर दुकूलहु।
कबहुँ श्याम श्यामा-दसनांचल, कच-कुच हार छुवत भुज मूलहु॥
अति लावण्य रूप अभिनय गुन, नाहिंन कोटि काम समतूलहु।
भृकुटि विलास हास रस वरषत, जैश्रीहित हरिवंश प्रेम रस झूलहु॥

सखियनि कैं उर ऐसी आई । व्याह विनोद रचैं सुखदाई॥
यहै बात सबकैं मन भाई । आनँद मोद बढ़्यौ अधिकाई॥
बढ़्यौ आनँद मोद सबकैं, महा प्रेम सुरँग रँगीं।
और कछु न सुहाइ तिनकौं, जुगल-सेवा-सुख पगीं॥
निशि-द्यौस जानत नाहिं सजनी, एक रस भींजी रहैं।
गोप-गोपिनु आदि दुर्लभ, तिहिं सुखहि दिन प्रति लहैं॥

ये नव दुलहिनि अति सुकुमारी। ये नव दूलह लालबिहारी॥
रँगभीने दोउ प्राननि प्यारे । नव-सत अंगनि-अंग सिंगारे॥
नवसत सिंगारे अंग-अंगनि, झलक तन की अति बढ़ी।
मौर-मौरी सीस सोहैं, मैंन-पानिप मुख चढ़ी॥
जलज-सुमन सु सेहरे रचि, रतन-हीरे जगमगैं।
देखि अद्‌भुत रूप मनमथ, कोटि रति पाँयन लगैं॥

शोभा मंडप कुंजनि द्वारैं । हित की बाँधी वन्दनवारैं॥
कुमकुम सौं लै अजिर लिपायौ । अद्‌भुत मोतिनु चौक पुरायौ॥
पुराइ अद्‌भुत चौक मोतिनु, चित्र रचना बहु करी।
आइ दोउ ठाढ़े भये तहाँ, सबनि की गति मति हरी॥
सुरंग मेंहदी रंग राचे, चरन-कर अति राजहीं।
विविध रागिनि किंकिनी अरु, मधुर नूपुर बाजहीं॥

वेदी - सेज सुदेस सुहाई । मन-दृग अंचल ग्रन्थि जुराई।
रीति भाँति विधि उचित बनाई। नेह की देवी तहाँ पुजाई॥
पूजि देवी नेह की दोउ, रति-विनोद बिहारहीं।
तिहि समैं सखि ललितादि हित सौं, हेरि प्राननि वारहीं॥
एक वैस सुभाव एकै, सहज जोरी सोहनी।
एक डोरी प्रेम की 'ध्रुव', बँधे मोहन-मोहनी॥

श्रीवृन्दावन धाम रसिक मन मोहहीं।
दूलह-दुलहिनि-व्याह सहज तहाँ सोहहीं॥१॥
नित्य सहाने पट अरु भूषन साजहीं।
नित्य नवल सम वैस एक रस राजहीं॥२॥

शोभा कौ सिर मौर चन्द्रिका मोर की।
वरनी न जाइ कछू छबि नवल किशोर की॥३॥
सुभग माँग रँग रेख मनौं अनुराग की।
झलकत मौरी सीस सुरंग सुहाग की॥४॥
मणिनु खचित नव कुंज रही जगमग जहाँ।
छबि कौ बन्यौ वितान सोई मंडप तहाँ॥५॥
वेदी-सेज सुदेश रची अति बानिकैं।
भाँति-भाँति के फूल सुरँग बहु आनिकैं॥६॥
गावत मोर-मराल सुहाये गीत री।
सहचरि भरीं आनन्द करत रसरीति री॥७॥
अलबेले सुकुमार फिरत तिहि ठाँव री।
दृग-अंचल परी ग्रन्थि लेत मन भाँवरी॥८॥
कँगना प्रेम अनूप कबहुँ नहिं छूटहीं।
पोयौ डोरी रूप सहज सो न टूटहीं॥९॥
रचि रहे कोमल कर अरु चरन सुरंग री।
सहज छबीले कुँवर निपुन सब अंग री॥१०॥
नूपुर कंकन किंकिनि बाजे बाजहीं।
निर्त्तत कोटि अनंग-नारि सब लाजहीं॥११॥
बाढ़्यौ है मन माँहिं अधिक आनन्द री।
फूले फिरत किशोर वृन्दावन चन्द री॥१२॥
सखियन किये बहु चार अनेक विनोद री।
दूधाभाती हेत बढ़्यौ मन मोद री॥१३॥
ललित लाल की बात जबहि सखियन कही।
लाज सहित सुकुमारि ओट पट दै रही॥१४॥

नमित ग्रीव छबि-सींव कुँवरि नहिं बोलहीं।
बुधि बल करत उपाय घूँघट पट खोलहीं॥१५॥
कनक कमल कर नील कलह अति कल बनी।
हँसत सखी सुख हेरि सहज शोभा घनी॥१६॥
वाम चरन सौं सीस लाल कौ लावहीं।
पानी वारि कुँवरि पर पियहिं पिवावहीं॥१७॥
मेलि सुगन्ध उगार सो वीरी खवावहीं।
समुझि कुँवर मुसिकाइ अधिक सुख पावहीं॥१८॥
और हास-परिहास रहसि रस रँग रह्यौ।
नित्यविहार-विनोद यथामति कछु कह्यौ॥१९॥
अंचल ओटि असीस सखी सब दैंहि री।
पल-पल बढ़ौ सुहाग नैंन सुख लैंहि री॥२०॥
जैसैं नवल विलास नवल-नवला करैं।
मन-मन की रुचि जानि नेह-विधि अनुसरैं॥२१॥
बैठी हैं निजु कुंज कुँवरि मन मोहनी।
झलकत रूप अपार सहज अति सोहनी॥२२॥
चाहि-चाहि सो रूप रसिक सिरमौर री।
भरि आये दोउ नैंन भई गति और री॥२३॥
अति आनँद कौ मोद न उरहिं समात री।
रीझि-रीझि रस भींजि आपु बलि जात री॥२४॥
अरुझे मन अरु नैंन बढ़्यौ अनुराग री।
एक प्रान द्वै देह नागर अरु नागरी॥२५॥
यौं राजत दोउ प्रीतम हँसि मुसिकात री।
निरखि परस्पर रूप न कबहुँ अघात री॥२६॥

तिनहीं के सुख रंग सखी दिन रँगमगीं।
और न कछू सुहाइ एक रस सब पगीं॥२७॥
उभय रूप रस सिन्धु मगन जहाँ सब भये।
दुर्लभ श्रीपति आदि सोइ सुख दिन नये॥२८॥
जैश्रीहितध्रुव मंगल सहज नित्य जो गावहीं।
सर्वोपरि सोई होइ प्रेम रस पावहीं॥२९॥

लाड़ी जू थारौ, अविचल रहौ जी सुहाग।
अलकलड़े रिझवार छैल सौं, नित नव बढ़ौ अनुराग॥
यौं नित बिहरौ ललितादिक सँग, वृन्दावन निजु बाग।
जय श्रीरूप अली हित जुगल-नेह लखि, मानत निजु बड़भाग॥

करुणा-बेली

श्रीव्याससुवन करुना अब करौ। मो सिर चारु चरन-रज धरौ॥
श्रीहितरूप कृपा की आसा। जाँचत उर धरि बड़ौ हुलासा॥
करुनानिधि तुव नाम कहावै। मो सौ दीन चरन-रति पावै॥
प्रथम करौ करुना गुरुराज। जिनकौं सरन गहैं की लाज॥
पुनि जे रसिक सु दृष्टि निहारौ। मोपै करुना सदा विचारौ॥
करुना-दया साधु-गुरु करिहैं। मो उर-ताप-तिमिर सब हरिहैं॥
श्रीगुरु-साधु जाहि अपनावैं। तेई जन हरि के मन भावैं॥
जिनकौ विरद विदित जग माँहीं। अभय करैं पकरैं जा बाँहीं॥
हे करुनानिधि ! करुणा कीजै। अब निजु सरन रावरी दीजै॥
ऐसी सदा विचारौ चितही। हौं तव कृपा मनावत नितही॥
विनती सुनौ साधु-मन-रंजन। तुव पद-कमल सकल दुख गंजन॥

अहो नाथ ! तुम दीनदयाला । अपने कौं कीजै प्रतिपाला॥
मो करनी नहिं चित में धरिये । अपनी कृपा ओर ही ढरिये॥
जो मम औगुन ग्रहन करौगे । अपनौं विरद आपु बिसरौगे॥
करुनामय यह विरद बढ़ावौ । जो हमसे दीननि अपनावौ॥
अहो कृष्ण! पद-रति अब पाऊँ। जुगल-केलि कल कीरति गाऊँ॥
देहु कृष्ण! यह भक्ति-सुधन है। तुव दासन कैं हिय दृढ़पन है॥
भक्तनि की अभिलाषा दाइक । हो राधापति! तुम सब लाइक॥
देहु-देहु करुना करि पद-रति । तुम समान को त्रिभुवन में पति॥
हे ब्रज-ईश ! सीस दीजै पद । तुम हौ परम दया-करुना-हद॥
करौ अनुग्रह अपने जन कौं । जैसैं गऊ चहत बच्छन कौं॥
यौं हरि देहु भक्ति-वरदानैं । जा कीरति कौं जगत वखानैं॥
हे गोकुल-विधु! वदन दिखावौ । नैंन-चकोरनि सुधा पिवावौ॥
निरखि सुफल ह्वै हैं दृग मेरे। पावन गुन गाऊँ हौं तेरे॥
अहो-अहो त्रिभुवन के स्वामी । तुम हौ सबके अन्तरजामी॥
यातें अपनी ओर निहारौ । मेरौ दोष न चित में धारौ॥
मिलन-आस की बेलि निपाई । ऐसी करौ जु अफल न जाई॥
तुव पद-दरसन पूरन फल है । दै सतसंगति सींचत जल है॥
यह अभिलाष रहत मन नित है। प्राननाथ! मम आरति चित है॥
तुम समरथ हौं दीन महाई । सरन गहैं की तुम्हैं बड़ाई॥
हो ब्रज-दूलह ! नन्द - दुलारे । कब ऐहौ दृग आगैं प्यारे॥
नहिं जानौं किहि छिन दरसौगे । तपत हियैं कब सुख बरसौगे॥
कानन सघन वीथियन माँहीं । निरखौं प्रिया-अंश गरवाहीं॥
पूरित नेह-वचन सुनिहौं जब । श्रवन-लाभ फल गनिहौं हरि! तब॥
हो वृन्दावनचन्द्र ! विनोदी । देहु दान हौं ओटौं गोदी॥
बात तुम्हारी जीवन मेरी । सब विधि पूजौ आश सबेरी॥
परम दया के मन्दिर तुमहीं । यातें सरन गहत हैं हमहीं॥

राखौ नाथ ! आपने नेरैं । अहो कृपा-निधि! हम नित टेरैं॥
तुम गुन गहर कमल-दल-लोचन। अपने जन के सब दुख-मोचन॥
हे सुन्दरवर ! तुम हौ नगधर । दीजै अभयदान सिर कर वर॥
सुनौ कान दै विनती हो हरि । तुमहिं सुनाऊँ बहुत भाँति करि॥
अपने की सुधि आपु न लीजै । ऐसी कहा निठुरता कीजै॥
और बात नहिं चितहि विचारौ। कृपा-दृष्टि मम ओर निहारौ॥
इहिं विधि नाथ! तुम्हारौ जस है। जो बिसरौ तौ कहा मम बस है॥
अहो कृष्ण! जो दास कहावै । सो क्यौं जगत माँहिं दुख पावै॥
यह तौ बड़ी त्रास आवत है। कृपा-अवधि क्यौं तोहि भावत है॥
कबहुँ न करौ दयाल ऐसी अब। चाहत सरन तुम्हारी हम सब॥
अपने जन की लज्जा गहिवैं । बहुत न आवत है प्रभु! कहिवैं॥
जाकौ अनुग सो न सुधि लेही । वह न कहावै नाथ ! सनेही॥
अगनित द्वन्द देह के पथ है । तुम बिनु टारनि को समरथ है॥
बार-बार हरि! हम यह जाँचैं । तुव पद छाँड़ि अनत नहिं राचैं॥
ऐसी सुमति देहु करुना-निधि । कहौ प्रानपति! मिलिहौ किहि विधि॥
कब उपजैगी यह मन माँहीं । राखौगे मोहि चरननि-छाँहीं॥
मैं तौ निहचै यही करी है । तुम धौं जिय में कहा धरी है॥
खोटौ-खरौ परौ जो सरनी । कहा देखिवैं ताकी करनी॥
विरद तुम्हारौ विदित रसाला । अब तौ करैं बनैं प्रतिपाला॥
कब ऐहौ इन नैंननि आगैं । कब ये रूप तिहारे पागैं॥
कब राधापति तुव पद दरसौं । सुजस रावरौ गावत सरसौं॥
हे अभिराम श्याम! वन-वासी । कब परसौं वे पद सुख-रासी॥
अब उर आशा अधिक भई है । तुम धौं मन में कहा ठई है॥
देहु न नाथ ! अनाकनी मोसौं । अपनी विथा सुनाई तोसौं॥
भली लगै सो करिहौ ब्रजपति । मेरैं तो तुमही हौ हरि ! गति॥

अहो जुगल-विधु! मो दृग भूषन । कब सींचौगे प्रेम-पियूषन॥
कौतुक मिथुन सकल छबि-ऐंना । वन घन रमत निहारौं नैंना॥
निभृत निकुंज तें निकसौ जब ही । मेरी दृष्टि परौगे तब ही॥
कब ह्वैहै वह मंगल बिरियाँ । आवत जुगल अंश-भुज धरियाँ॥
अब कछु कहत परस्पर बानी । सो तौ परम नेह-रस-सानी॥
ताहि सुनत बदलै गति तन की । पूजैं अभिलाषा सब मन की॥
हे सुख-रासि! दास्य अब पाऊँ। हे प्रभु ! तुव पद कृपा मनाऊँ॥
कानन कमनी केलि विलोकौं । निरखत पलक-धरनि-गति रोकौं॥
ऐसौ बानिक बनिहै कबहूँ । करुणामय! विनती सुनि अबहूँ॥
अति अभिराम श्याम सुख-दाता । तुम पतितनि-पावन विख्याता॥
अहो अकिंचनजन-मन-भावन । भक्तनि-उर आनन्द बढ़ावन॥
दासनि-भीर सदा लागत हौ । अब कछु नाथ! दूर भागत हौ॥
जो तुम कहौ करम तुम खोटे । तौ तुम हरि का विधि हौ मोटे॥
करमनि के बस तुव जन होई । तौ तुव भजन करै क्यौं कोई॥
जो तुम बड़े करम ठहरावौ । तौ तुम क्यौं जग-ईश कहावौ॥
जाकैं दण्ड जगत यह नाँच्यौ । सोई धनी कहावै साँच्यौ॥
जो हरि-दास करम-बस कहियैं । तौ प्रभु! तुमहिं न ऐसी चहियैं॥
नीति-अनीति आपु ही देखौ। हमकौं याकौ बड़ौ परेखौ॥
उत्तम करमनि करि जो तरियैं । तौ तुमकौं काहैं अनुसरियैं॥
यह हठ छाँड़ि देहु अब हरि! किन । करमनि-लार बहावौ प्रभु! जिन॥
साधु-सभा के तुम ही मंडन। करौ कटाक्ष कर्म होंहि खंडन॥
हो ब्रजनाथ ! साथ देहु मेरौ । ऐंचौ पकरि बाँह हौं तेरौ॥
हौं भूल्यौ संसार-विषय-वन। भ्रमत फिरौं पाऊँ पीड़ा तन॥
तुम सौ दयाल देखि छिटकावै । कहौ कृष्ण ! को पार लगावै॥
यह गति देखि जो न कसकै मन । तौ हरि कहा कहायें तो जन॥

अपने कौं स्वामी जो तजिहै । लेहु विचारि कौंन हरि! लजिहै॥
जो अगतिन की गति नहिं करिहै । कहौ कृष्ण! को फैंट पकरिहै॥
अब चितवौ रंचक सु दृष्टि करि । अखिल भुवन तौ जाय नाथ तरि॥
जाकौ जतन कहा करिवैं है । रंचक दया हृदय धरिवैं है॥
तुम तौ दीनदयाल प्रभू ! अति । हौं हित रूप चरन पाऊँ रति॥
तुम हरि! उर आनन्द भरन हौ । भक्तनि की आरति जु हरन हौ॥
अब न गहर कीजै इत देखौ । जैसैं टरै करम की रेखौ॥
हो दुख-दमन रसिक राधापति । भक्ति-दान दीजै उदार मति॥
दाता देत कछू नहिं राखै । श्रीगुरु-सन्त-भागवत भाखै॥
देहु-देहु पद-सेव सदाई । तुम दानी हौं कृपन महाई॥
सब जुग माँहिं विदित यह गाथा । जो अनाथ सो किये सनाथा॥
तातें विरद पुरातन गहियैं । तुमसौं बार-बार हरि! कहियैं॥
वृन्दावन हित रूप रावरे । कब परिहौ मम दृष्टि साँवरे॥
राधा-रसिक कहावौ नागर । भक्तनि की गति करुना-सागर॥
वरनि सुनाई बेली करुना । अब तौ नाथ! कृपा दिशि ढरु ना॥
हौं नहिं लोक भ्रमनि तें डरौं । एक बात कौ संशय करौं॥
बिसरौ जिन उर तें भगवन्त । इच्छा बस तन धरौं अनन्त॥
जो कोउ जाकी सरनी आवै । जदपि औगुनी दण्ड न पावै॥
अहो सरनागत-पालक गिरिधर। अब मो लाज राखि सुन्दरवर॥
सती चढ़ी सर अगनि न जारै । कहौ नाथ! वह कहाँ पुकारै॥
प्यासे कौं जल नदी न देई । तौ हरि! कहौ कौंन सुधि लेई॥
प्रफुलित कमल रोष रवि ठानैं । यह दुख वारिज कहाँ वखानैं॥
चन्द्र चकोरनि तें दुरि रहिहै । हो हरि! व्यथा कहाँ वह कहिहै॥
दीपक मन्दिर हरै न तम कौं । तौ प्रभु! तुम बिसरावौ हमकौं॥
जो जल काठ न तरै गुसाँईं । तरुवर बैठनि देय न छाँईं॥

सुनौ प्रानपति! तौ कहा बस है। जोपै उन मन धर्‌यौ विरस है॥
ये व्रत तजैं तौ अचरज नाहीं। पै न संभवै प्रभु ! तुम माँहीं॥
अहो कृष्ण! अब करौ न ऐसी। जैसैं तुम जु विचारौ तैसी॥
नैंक सु दृष्टि करौ मम ओरी। कारज होइ बात यह थोरी॥
हे बलवीर! धीर मति पन के। रक्षक सदा आपुने जन के॥
त्राहिमाम सरनागति आयौ। त्यागु न उचित जु भृत्य कहायौ॥
सुनौ कान दै कानन-वासी। अब जिन जगत करावौ हाँसी॥
तुम जु ज्ञान घन त्रिभुवन-ईशै। अभय कर-कमल धरौ मम सीसै॥
मैं विनती प्रभु ! करी घनेरी। कही रुचि दैंनी प्रेम-पहेरी॥
सुनिकैं नाथ ! धरौ मन माँहीं। जैसैं परयौ रहौं पद-छाँहीं॥
तुम लाइक दाइक सबही सुख। दरसावौ काहे न सुन्दर मुख॥
पाऊँ यह प्रसाद शोभा-धर। ब्रजपतिनन्दन हो राधावर॥

दोहा–

श्रीहरिवंश-प्रताप तें, वरनी करुना-बेलि।
ब्रजभूषन राधा धनी, दरसावौ रस-केलि॥
सम्वत सै दस आठ गत, चारि वरष उपरन्त।
कृष्णदास अभिलाष हित, कथी सुनौ हरि-सन्त॥
जेठ बदी पाँचैं सु दिन, बलि हित रूप विचार।
हरि-गुरु-साधु कृपा करी, वरन्यौं यह सुख-सार॥
दीनबन्धु करुना-अवधि, भक्तबछल यह नाम।
वृन्दावन हित लेहु सुधि, विरद बढ़ै ज्यौं श्याम॥

॥ इति श्रीकरुना बेली चाचा श्रीहित वृन्दावनदासजी कृत संपूर्ण॥

स्फुट पदावली

जै जै श्रीहरिवंश कहौ मिलिकैं।
सुन्दर व्याससुवन जन बल्लभ, करि दर्शन पाँयन चलिकैं॥
प्रेम-पियालौ परगट कीयौ, पियौ साधु सब हिलमिलिकैं।
चढ़ी खुमारी महा मधुर रस, युगल रूप नैंननि झलकैं॥
मेटी आन कानि व्रत संयम, एक भरोसे राधावर कैं।
करुणा करिकैं अभय पद दीये, किये पावन जन या कलि कैं॥
अगनित जग में रंक जिवाये, श्रीराधा नामामृत फलिकैं।
शरणाये अपनाये निज करि, कृष्णदास हित बलि-बलि कैं॥

जै जै राधाबल्लभलाल, जै जै व्यास कुँवर वर लाल।
अधम उधारन दीन के बन्धू, करुणा-सिन्धु कृपाल॥
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, मुरली अधर रसाल।
नासा मुक्ता लसत अनूपम, वैंदी झलकैं भाल॥
अलक झलक छबि वदन-कमल पर, लोचन लोल विशाल।
हँसन दसन दुति दामिनि दमकैं, बाजूबंद रसाल॥
घूम घुमारौ बागौ सोहै, उर बैजन्ती माल।
कटि किंकिनि पग नूपुर बाजैं, गज गति चाल [illegible]साल॥
वृन्दावन की कुंज गलिनि में, मोहि लई ब्रज बाल।
जैश्रीकमलनैंन हित रूप उजागर, शरणागत प्रतिपाल॥

इतनौ कह्यौ हमारौ करियौ।
जो हरिवंश नाम मुख उचरै, ताके पाँयन परियौ॥
जो जन हित हरिवंश धर्म रत, ताहि अंक में भरियौ।
नरवाहन की कथा श्रवन सुनि, अपने चित में धरियौ॥
श्रीहरिवंश-रीति के काजैं, लोक-लाज तैं लरियौ।
हित कौ हेत खेत गहि रहियौ, टारैं नाँहिन टरियौ॥

भक्त कहाय बाँधिकैं बानौ, काहू तें मति डरियौ।
रसिक मुकुन्द रूप बस ह्वै कैं, रास-रंग रस ढरियौ॥

इहि विधि सौं नहिं भक्त कहावै।
हरि-पूजा करि मान बड़ाई, काम-कामना भावै॥
पढ़ि-पढ़ि ग्रन्थ निगम-आगम सब, थोथेहि गाल बजावै।
जैश्रीरूपलाल हित करनी कथनी, एक करै अपुनावै॥

अहो लड़ैती! दीजियैं वृन्दावन रहिवौ।
न्हान पान जल रविसुता, तुम कृपा जु चहिवौ॥
रज कौं सरवस मानिवौ, मति आन न बहिवौ।
जथा लाभ सन्तोष करि, कुंजनि कौ गहिवौ॥
रस रूपी कौतुक चरित, वानी कथि कहिवौ।
छिन-छिन प्रेम जु भींजिवौ, तुम मिलन उमहिवौ॥
देह जनित दुख-सुख सबै, अपनी कृत सहिवौ।
वृन्दावन हित रूप भजि, यह अलभ जु लहिवौ॥

श्रीहरिवंश सार श्रुति वरन्यौ, राधा-हरि-जस गावौ रे।
जीवन थोरौ थिर कछु नाँहीं, काहे जनम गमावौ रे॥
यह रविजा-तट यह वृन्दावन, यह सत्संग न पावौ रे।
यह नर-देह सजन प्रभु दीन्ही, ताहि न विषय हरावौ रे॥
यह कौतिक विलास रस लीला, गुरु-दत मनहिं लगावौ रे।
यह अद्‌भुत औसर बसि कुंजनि, दम्पति कौं दुलरावौ रे॥
यह रसना गौरंग-श्याम-गुन, चरितनि में सरसावौ रे।
वृन्दावन हित रूप मिथुन कौं, नव-नव लाड़ लड़ावौ रे॥

मन! श्रीहरिवंश-ध्यान धरि रे।
प्रफुलित वदन सदा आनँदमय, दम्पति सुख रहौ भरि रे॥
टहल लियैं पिय-प्यारी आगैं, छिन पल कहूँ न जाहीं।
दोऊ मन कौं लियैं हियैं में, कुंजमहल विलसाहीं॥

जिनके भजन अहर्निशि कीयैं, जुगल-चरन होइ आशा।
आवागमन मिटै रे भाई, पावै वृन्दावन-वासा॥
मन-क्रम-वचन वासना सब तजि, सुमिरन में नित रहु रे।
माया-भ्रम सुपने की संपति, जतनलाल हित लहु रे॥

पर की घट उत्कर्ष निज, प्रभु सौं सह्यौ न जात।
अपने पति हरिवंश की, किहिं विधि कहियैं बात॥
किहिं विधि कहियैं बात, मौन ही ह्वै कैं रहिये।
निन्दक निन्दा करैं, मारि मन सोऊ सहिये॥
निन्दक निन्दा करैं, उलटि नहिं दीजै उत्तर।
पति कौ रुख पहिचान, उबरिये पाँयन पर-पर॥

स्वामिनि ! सुनि विनती यह मेरी।
वेगि बुलाइ लेहु अपने ढिंग, अब जिन करि टुक देरी॥
हौं भूली निजु रूप भ्रमत जग, अगनित कीनी फेरी।
दुखी जदपि पै निकसि सकत नहिं, बन्धन बड़े-बड़े री॥
सब विधि हौं अयोग्य निःसंशय, कर उचाइ कहौं टेरी।
ऐपै ये हू साँच स्वामिनी, हौं तव चरननि-चेरी॥
भोरी परम उदार कृपा-निधि, प्रकृति जाउँ बलि तेरी।
करुना-दृष्टि करौ करुनाकर, विरद रहै जैसैं री॥
किहिं अपराध बिडारी, विरह के बासर बहु बितये री।
अली किशोरी नाम साँचौ करि, राखौ अपने नेरी॥

अब केतौ दुख अरु सहनौं है।
हाय-हाय या जगत-ज्वाल में, रोय-रोय केतौ दहनौं है॥
तुम बिनु बहुत दिना बितये अब, भावत नहिं ह्याँ कौ रहनौं है।
स्वामिनि! सब हिय की जानति हौ, तुम सौं अधिक कहा कहनौं है॥
तुम सम को कृपाल कोमल चित, मोकौं और कहा लहनौं है।
मोहूँ कौं अब देहु किशोरी, अलिगन-उर कौ जो गहनौं है॥

स्वामिनि ! चरन-चिन्तन देहु।
तुव चरन-अम्भोज सौं, अनुराग बढ़ौ अछेहु॥
मुदित मन उर अमल मंदिर, राजतीं ससनेहु।
राग-द्वेष रु काम-क्रोध, सजोर कियौ निजु गेहु॥
करहु एक कृपा-कटाक्ष जु, सदा वरषत मेहु।
अब किशोरी अलि भ्रमत कौं, आपुनी करि लेहु॥

कुँवरि-कुँवर बिहरत रहौ, मुदित उदित मो नैंन।
पलकनि की चिक डारिकैं, लखौं लहौं चित चैंन॥
सुखद सहानी सेज पर, मो उर करहु बिहार।
सु मन-करन चाँपू चरन, प्राननि करि बलिहार॥
मधुर-मधुर बतियाँ करौ, अधार रमी मुसिकान।
सेजरिया के पाँय-तर, दुरी लगाऊँ कान॥
ललक बढ़ै लालच बढ़ै, अमित लाल के हीय।
कोक-कला-कोविद बढ़ै, रसिक रूप कमनीय॥
ता रूपहि अवलोकिकैं, स्वामिनि सदय उदार।
प्यावहु सुख पावहु अधिक, अधर-सुधा रस-सार॥
अधिक-अधिक उरझौ दोऊ, सुरझनि मिस अति सूर।
लिपटि-लिपटि छुटि-छुटि लिपटि, गरजौ केलि गरूर॥
लिपटि रहौं लपटानि जुग, कबहुँ न होय वियोग।
फूलौं झूलौं यौं सदा, देखि मधुर संयोग॥
हाय-हाय हा स्वामिनी!, एतौई कछु देहु।
अली किशोरी की विनय, एक पोत सुनि लेहु॥

दई तजि करुना की कहा बानि।
रहि न सकत हीं सुनत करुण स्वर, आइ गहति जन पानि॥
कैधौं क्रीड़ा मगन भईं अति, सुनत न मेरी टेर।
कैधौं दुरीं और काहू जन पै, तहाँ लगि गई बेर॥
हौं अपने बल चलि न सकत पग, गहि न सकत तुव द्वार।

ऐंचौ अपने हाथ कृपा करि, जग तें लेहु उबार॥
चूक परी तौ अपने ही कर, पकरौ मेरे कान।
पै राखौ अपने ढिंग स्वामिनि, बलि-बलि कृपा-निधान॥
तुम दासी वत्सला कहावौ, हितअलि-गिरा प्रमान।
हौं दासी तुम स्वामिनि मेरी, यह तौ सत्य निदान॥
निपट अपात्र जदपि हौं तद्दपि, वेगहि लेहु बुलाय।
अली किशोरी कौं अपनी करि, परिकर माँहिं मिलाय॥

स्वामिनि ! वह बिरियाँ कब ऐहै।
तुम सौं अन्तर करनिहार यह, मलिन देह छुटि जैहै॥
सकुचत सिमिटत तन पुलकित अति, विवस भई आनन्द।
हितअलि कें पाछैं लगि पहुँचूँ, तुम ढिंग चलि गति मन्द॥
तुम पद-परसि चलनि चहौं जब ही, हँसि पकरौ मो बाँह।
पूछौ को यह नई? कहैं वे, पली रूपहित छाँह॥
यह तौ मेरी अली किशोरी, यौं कहि फेरौ हाथ।
मोहि रिझाय गाइ गुन हित के, तू रहि मेरे साथ॥

स्वामिनि ! वेगि लेहु बुलाय।
करि कृपा निजु सखी-परिकर, माँहिं मोहि मिलाय॥
किते दिन बीते जु तुम बिनु, अब रह्यौ नहिं जाय।
मिलन कौं अरवरत हियरा, दिनहिं-दिन अकुलाय॥
गहत जे हरिवंश-सरनी, चिठी लेत चढ़ाय।
कुँवरि हित-नातौ जु मानति, कही रसिकनि गाय॥
सत्य किधौं असत्य स्वामिनि, तुमहि देहु बताय।
आप हू श्रीमुख कही, हौं कहा कहौं जु सुनाय॥
एक इहिं विश्वास-बल, मैं गह्यौ द्वारौ आय।
कहाँ जाऊँ स्वामिनी ! अब, अलि किशोरि कहाय॥

स्वामिनि ! वेगि करुना करौ।
ज्यौं ढरति आईं सहज बलि, त्यौंहि मोपै ढरौ॥
कै मिलावौ किंकरिन में, मिटै तन झगरौ।
कै मुदित प्रतिक्षन उदित, मेरैं हृदय बिहरौ॥
नैंन मेरे ऐन करि निजु, एक क्षन नहिं टरौ।
बढ़ै छिन-छिन प्यास, ऐसे रूप-रस सौं भरौ॥
पात्र और अपात्र कैसौ, तनक जो मन धरौ।
अलि किशोरी आपने मुख, सकृत तुम उचरौ॥

स्वामिनि ! वेगि मो सुधि लेहु।
आपने कर ऐंचि बरबट, वास निजु ढिंग देहु॥
अजहुँ लौं भूली भ्रमत, मो प्रकृति परी जु एहु।
तुम जु भूलत कत? स्वजन पै, करत सहज सनेहु॥
कै बसावौ गेह निजु, कै बसौ मम उर-गेहु।
अलि किशोरिनु संग खेलौं, कबहुँ परै न छेहु॥

स्वामिनि ! मोहिं काहू विधि अपनावौ।
जो पै निपट योग्य अपनावत, तौ मोहि योग्य बनावौ॥
जो पै योग्य-अयोग्य न देखत, प्रणतनि आश पुजावौ।
तौ पै वेगि करहु करुणा अब, अपने निकट बुलावौ॥
नाना रूप अहं-भूतन सौं, बल करि मोहिं बचावौ।
इन करि आवेशित हौं भूली, इनके बन्ध छुड़ावौ॥
तुमकौं कहा अशक्य स्वामिनी!, अब न अधिक बहरावौ।
अली किशोरी अपनी कौं अब, अपनिनु माँहि मिलावौ॥